

अगस्त
2024

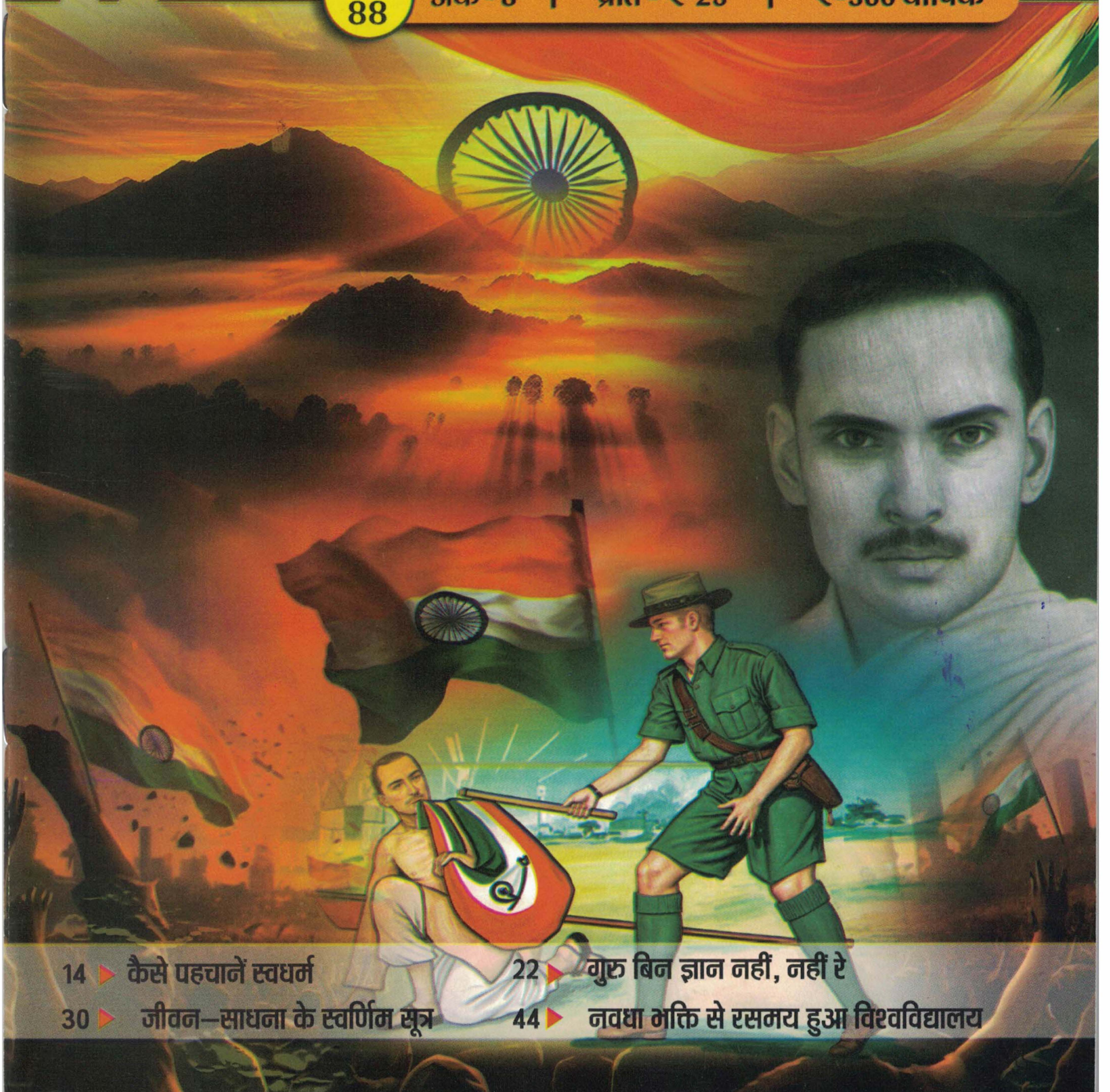


धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

आखण्ड ज्योति

वर्ष
88

अंक-8 | प्रति-₹ 25 | ₹-300 वार्षिक

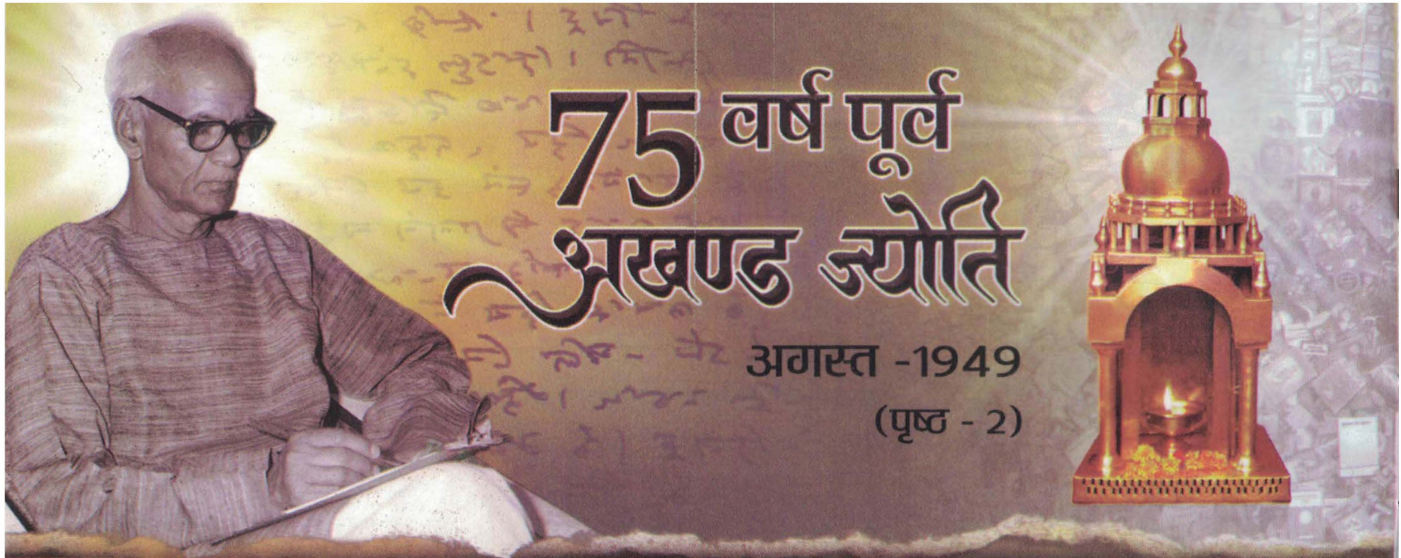


14 ▶ कैसे पहचानें स्वधर्म

30 ▶ जीवन-साधना के स्वर्णिम सूत्र

22 ▶ गुरु बिन ज्ञान नहीं, नहीं रे

44 ▶ नवधा भक्ति से रसमय हुआ विश्वविद्यालय



श्रावणी पर्व का संदेश



श्रावण सुदी पूर्णमासी को श्रावणी का त्योहार होता है। यह 'ज्ञान का पर्व' है। सद्ज्ञान, विद्या, बुद्धि, विवेक और धर्म की वृद्धि के लिए इसे बनाया गया है। इसलिए इसे ब्राह्म पर्व भी कहते हैं। वेद का प्रारंभ इस त्योहार से किया जाता है। इस दिन से लेकर भाद्रपद बदी सप्तमी तक एक सप्ताह वेद प्रचार की प्रथा चिरकाल से प्रचलित है। प्राचीनकाल में इस त्योहार के अवसर पर गुरुकुलों में नए छात्र प्रवेश होते थे। जिनका यज्ञोपवीत नहीं हुआ, उन्हें यज्ञोपवीत दिए जाते थे। गुरु-शिष्य के परम पवित्र एवं अत्यंत आवश्यक संबंध की स्थापना होती थी। वेदमंत्रों से मंत्रित किया हुआ रक्षासूत्र आचार्य लोग अपने शिष्यों के हाथ में बाँधते थे, यह सूत्र उनकी रक्षा करता था। और उन्हें धर्म-प्रतिज्ञा के बंधन में बाँधता था। बहनें अपने भाइयों के हाथों राखी बाँधकर या भुजरियाँ (गेहूँ या जौ के बड़े हुए अंकुर) देकर भाइयों को यह याद दिलाती थीं कि बहनों की रक्षा के लिए उनका क्या कर्तव्य है? भाई उसके बदले में उन्हें आश्वासन के रूप में कुछ उपहार देते थे, मानों वे कहते हों कि हम पूरी तरह सावधान हैं और बहनों के ऊपर, नारी जाति के ऊपर कोई विपत्ति आएगी तो हम प्राण देकर भी उसका निवारण करेंगे। उस दिन नए-नए लता, पुष्प-वृक्ष आदि लगाकर संसार की शोभा और समृद्धि बढ़ाने के लिए प्रयत्न किया जाता था।



ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

उस प्राणस्वरूप, बुद्धिनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।



संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं

शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक

डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय

बिरला मंदिर के सामने मथुरा-बुंदावन
रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)

दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273

मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039

समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।

नया ई-मेल :

akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	88
अंक	:	08
अगस्त	:	2024
श्रावण-भाद्रपद	:	2081
प्रकाशन तिथि	:	01.07.2024
वार्षिक चंदा	:	
भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-
आजीवन (बीसवर्षीय)	:	
भारत में	:	6000/-

जप-तप

जप-तप, दोनों दो होकर भी एक हैं। जप के बिना तप दिशाहीन हो जाता है, जबकि तप के बिना जप निष्प्राण हो जाता है। जप का आधार मंत्र है। मंत्र यानी कि सुविचार-सद्विचार-जीवनदर्शन। तप अर्थात् अनुशासन, संयम, जीवन-ऊर्जा का संरक्षण। केवल विचार के रूप में नहीं, बल्कि प्रक्रिया के स्वरूप में भी दोनों एकदूसरे से घुले-मिले हैं। बिल्कुल दूध और शक्कर की तरह। एक में पौष्टिकता तो दूसरे में स्वाद। एकदम श्वास और वायु की तरह—एक जीवन है, दूसरा जीवनप्रदाता।

गायत्री महासाधना प्रज्ञावतार के जीवन में इसी तरह समाविष्ट हुई। गायत्री मंत्रार्थ पर मनन इसे 'ज्ञानयोग' बनाता है। प्राणों के साथ इसकी श्वास-लय इसे प्राणायाम के 'प्राणयोग' में परिवर्तित करती है। मंत्रजप के साथ सूर्य का ध्यान इसे 'ध्यानयोग' बना देता है। मंत्र के साथ जप-ध्वनि का मन-गुंजन इसे 'नादयोग' की सार्थकता प्रदान करता है। एक मंत्र से इस तरह अनेकों प्रक्रियाएँ एक साथ संपन्न होती हैं; जो देह, प्राण व मन को धीमे-धीमे परिवर्तित-रूपांतरित करती हैं। जप-प्रक्रिया के साथ तप-प्रक्रिया भी बहुआयामी है। सदाचरण के अनुशासन, इंद्रियों के संयम, व्रतशीलता के व्रतबंध, संकल्प की साधना मिलकर ही तप को संभव करते हैं। इससे तन-मन-जीवन न बहकता है और न भटकता है। भावों की भक्ति का अमृत-रस जप व तप, दोनों को परस्पर घोलकर एकरस कर देता है। इस रसमयता में संपूर्ण अस्तित्व स्वतः अपने इष्ट में घुलने लगता है। तब साधना, साधक एवं साध्य तीनों इस सरसता में समा जाते हैं और गायत्री की महाप्रज्ञा अवतरित होकर साधना को सार्थक-सफल व संपूर्ण करती है। यही युगऋषि की साधनानुभूति बनी। □

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विषय सूची

❖ आवरण—1	1	❖ अमरता की यात्रा	33
❖ आवरण—2	2	❖ आत्मा की आवाज	35
❖ जप-तप	3	❖ महान संपदा है शील	37
❖ विशिष्ट सामयिक चिंतन		❖ ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति	
जैविक कृषि भी एक युगधर्म	5	शोध सार—184	
❖ भगवद्भक्ति का परिणाम	7	अभिभावकों के व्यक्तित्व प्रकार पर शोध	39
❖ पर्व विशेष—श्रावणी पर्व		❖ युगगीता—291	
ब्रह्म पर्व-श्रावणी पर्व	9	त्यागने से पहले जानें अपनाने योग्य कर्म	42
❖ मानव जीवन का सर्वोच्च फल	12	❖ विश्वविद्यालय परिसर से—230	
❖ कैसे पहचानें स्वधर्म	14	नवधाभक्ति से रसमय हुआ विश्वविद्यालय	44
❖ उत्कृष्ट जीवन की पहचान	17	❖ परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी	
❖ व्यक्तित्व की क्षुद्रता को मिटाता है योग	19	उपासना का आधार	51
❖ आध्यात्मिकता का सार	21	❖ साधना शताब्दी-विशिष्ट लेखमाला	
❖ गुरु बिन ज्ञान नहीं, नहीं रे	22	अंतरिक्ष में प्रकाश का आगमन	59
❖ पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने		❖ अपनों से अपनी बात	
देखा-समझा—23		गायत्री का संध्यावंदन	62
जीतता है इंद्रिय संयम	25	❖ स्वर्ग बनेगी धरती सारी (कविता)	66
❖ कैसे गढ़ें विद्यार्थी का जीवन	27	❖ आवरण—3	67
❖ जीवन-साधना के स्वर्णिम सत्र	30	❖ आवरण—4	68

आवरण पृष्ठ परिचय

स्वतंत्रता संग्राम सेनानी हमारे गुरुदेव

अगस्त-सितंबर, 2024 के पर्व-त्योहार

रविवार	04 अगस्त	हरियाली अमावस्या	शनिवार	07 सितंबर	श्री गणेश चतुर्थी
शुक्रवार	09 अगस्त	नाग पंचमी	रविवार	08 सितंबर	ऋषि पंचमी
शनिवार	10 अगस्त	सूर्य षष्ठी	सोमवार	09 सितंबर	सूर्य षष्ठी
सोमवार	12 अगस्त	तुलसी जयंती	शनिवार	14 सितंबर	जलझूलनी एकादशी
गुरुवार	15 अगस्त	स्वतंत्रता दिवस	रविवार	15 सितंबर	वामन जयंती
शुक्रवार	16 अगस्त	पवित्रा एकादशी	मंगलवार	17 सितंबर	महालयारंभ/विश्वकर्मा जयंती
सोमवार	19 अगस्त	रक्षाबंधन/ श्रावणी पूर्णिमा	बुधवार	18 सितंबर	महाप्रयाण दिवस वंद. माताजी
गुरुवार	22 अगस्त	बहुला चौथ	शनिवार	21 सितंबर	माता भगवती देवी शर्मा जयंती
शनिवार	24 अगस्त	हल षष्ठी	गुरुवार	26 सितंबर	मातृनवमी
सोमवार	26 अगस्त	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी	शनिवार	28 सितंबर	इंदिरा एकादशी
गुरुवार	29 अगस्त	अजा एकादशी	सोमवार	30 सितंबर	पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जयंती
सोमवार	02 सितंबर	कुशाग्रहणी अमावस्या			
शुक्रवार	06 सितंबर	हरितालिका व्रत			

यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —संपादक

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

जैविक कृषि भी एक युगधर्म



भारत में कृषि एक ऋषि कर्म रहा है, जिसमें पृथ्वी के प्रति श्रद्धा एवं आत्मीयता से पूर्ण भाव के साथ व्यवहार किया जाता रहा है। इस रूप में कृषि का प्रकृति के साथ गहरा संबंध रहा है और यहाँ हजारों वर्षों से जैविक कृषि का चलन रहा है और यह इसी प्रकृति से जुड़ी खेती का परिणाम था कि इतने लंबे समय तक अनवरत अन्न उत्पादन करते हुए भी यहाँ की भूमि की उर्वराशक्ति बनी रही और जनसंख्या का एक बड़ा भाग कृषि कर्म के साथ जुड़कर विश्व का भाग्यविधाता बना रहा, लेकिन बढ़ती जनसंख्या और बाजारीकरण के साथ उत्पादन का दबाव बढ़ता गया और वहीं तकनीकी विकास के साथ कृषि में नए आयाम भी जुड़ते गए।

बढ़ती खाद्य आवश्यकताओं को देखते हुए सन् 1966-67 में कृषि प्रौद्योगिकीकरण के साथ हरितक्रांति की शुरुआत हुई; जिसमें संकर बीज, रासायनिक उर्वरक व कीटनाशकों का चलन शुरू हुआ। प्रारंभ में इनके प्रयोग से उत्पादन अवश्य बढ़ा, लेकिन समय के साथ इसके दुष्परिणाम भी हाथोंहाथ मिलना प्रारंभ हुए, जिसमें मिट्टी, उपज, कृषक और पर्यावरण सभी गंभीर रूप से प्रभावित होते गए।

इसी के साथ विज्ञान से उपजे भौतिकवादी दर्शन और व्यक्ति की भोगवादी सोच के चलते धरती एवं प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता का गंभीर रूप से क्षय होता गया। अधिक-से-अधिक लाभ की हवस में इनके साथ मानवीय रिश्ते तार-तार होते गए और इनके दोहन से लेकर शोषण का अंतहीन क्रम प्रारंभ हो गया, जो आज भी निर्बाध रूप से जारी है।

ज्ञात हो कि भारत में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग लगभग 97 किलो प्रतिहेक्टेयर तथा कीटनाशकों का प्रयोग लगभग 300 ग्राम प्रति हेक्टेयर होता है। इस आधार पर हम विश्व में चौथे स्थान पर हैं।

प्रयोग किए गए रासायनिक उर्वरकों का मात्र 23 प्रतिशत ही फसलों को मिल पाता है, शेष 77 प्रतिशत से विभिन्न प्रकार के प्रदूषणजन्य विकार पैदा होते हैं। रासायनिक खाद, कीटनाशक, खरपतवारनाशक और संकरित बीजों के अंधाधुंध प्रयोग के चलते मिट्टी के अंदर सूक्ष्म पोषक तत्वों तथा जीवाणुओं का नाश होता है और यदि यह प्रक्रिया लंबे समय तक जारी रहती है तो मिट्टी फसल उगाने लायक तक नहीं रह जाती है।

रासायनिक खेती के अधिक उपयोग के कारण पर्यावरण में भी भारी असंतुलन उत्पन्न हो रहा है। देश के जल प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, वायु प्रदूषण में रासायनिक उर्वरकों की बहुत बड़ी भूमिका है। किसान एक बार जितनी रासायनिक खाद डालता है, दूसरी फसल में और अधिक खाद डालनी पड़ती है।

इनके प्रयोग से भूमि धीरे-धीरे कठोर हो जाती है। धरती में जो सूक्ष्मजीव मिट्टी को नरम और उपजाऊ बनाते हैं, वे मर जाते हैं। परिणामस्वरूप भूमि बंजर होती जाती है और कीटनाशकों के बढ़े-चढ़े उपयोग के साथ इसकी विषाक्तता कई गुना बढ़ती जाती है।

देश में इसी के कारण अधिक लाभ व उत्पादन की अंधी दौड़ में उर्वर-क्षेत्रों में भूमि का एक बड़ा हिस्सा रासायनिक खाद और कीटनाशकों के

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

अवशेषों से दूषित हो चुका है और एक बड़ा हिस्सा इनकी चपेट में आ रहा है। भूमि की उर्वरा शक्ति कम हो रही है, इसमें पोटेशियम, फॉस्फोरस और नाइट्रोजन के अतिरिक्त जीवांश में कमी आ रही है।

जीवांश के कम होने का प्रभाव फसलों के उत्पादन पर पड़ता है। दूसरी ओर खेतों में तैयार हो रही हर तरह की खाद्य सामग्री विषाक्त हो रही है और जनता इनसे उत्पन्न हो रही विषाक्त सब्जियों, फल, अन्न तथा अन्य खाद्य पदार्थ के सेवन के लिए बाध्य है और उनके खतरनाक अंश मानव शरीर तक पहुँच रहे हैं।

विगत दिनों संपन्न हुए एक शोध-अध्ययन के अनुसार, फल-सब्जियों में पाए जाने वाले कीटनाशक तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करने से लेकर शरीर के हॉर्मोनल संतुलन को बिगाड़ सकते हैं और कैंसर का कारण बन सकते हैं।

एक शोध के अंतर्गत कीटनाशकों से बच्चों में स्मृतिक्षय की समस्या देखी गई तो वहीं ये भ्रूण विकास, प्रजनन और मेटाबोलिज्म को भी प्रभावित करते देखे गए। इसके साथ ये अम्लीयता, रक्तचाप से लेकर मधुमेह और कैंसर जैसे खतरनाक रोगों का कारण बनते पाए गए।

पंजाब प्रांत से चलती कैंसर ट्रेन इसका एक जीवंत उदाहरण है, जिसमें हरितक्रांति के अगुआ रहे पंजाब प्रांत से अत्यधिक रसायन तथा कीटनाशकों के उपयोग के कारण विभिन्न प्रकार के कैंसरों से पीड़ित रोगी सस्ते इलाज के लिए कैंसर ट्रेन से राजस्थान के बीकानेर स्थित कैंसर अस्पताल पहुँचते हैं।

अब यह त्रासदी पंजाब तक सीमित नहीं रह गई है, वरन फल व सब्जियों के लिए प्रख्यात पहाड़ी प्रांतों एवं पठारी तथा मैदानी क्षेत्रों तक पाँव पसार चुकी है। वहाँ इनके दुष्प्रभाव की घटनाएँ प्रकाश में आना प्रारंभ हो चुकी हैं, जहाँ कीटनाशकों

तथा रासायनिक उर्वरकों का उपयोग धड़ल्ले से हो रहा है।

संक्रमित अन्न, दूध व इनके उत्पादों, फलों व शाक-सब्जियों के कारण कैंसर तथा अन्य घातक रोगों से पीड़ित लोगों में स्वस्थ आहार व खाद्य-उत्पादों के प्रति जागरूकता बढ़ी है। लोग समय से पूर्व काल-कल्चित होने तथा औषधियों एवं विभिन्न उपचारों पर बेतहाशा धन खर्च करने के बजाय महँगे पौष्टिक एवं प्राकृतिक फल व सब्जियों की प्राप्ति पर निवेश करना अधिक पसंद कर रहे हैं।

यह उनकी मजबूरी भी है और आवश्यकता भी, लेकिन प्राकृतिक और जैविक उत्पादों की जितनी माँग है, उतने उत्पाद तैयार नहीं हो पा रहे हैं। जो जैविक उत्पाद तैयार हो भी रहे हैं, वे इतने महँगे हैं कि आम जनता की पहुँच से बाहर ही कहे जा सकते हैं।

यह कृषि वैज्ञानिकों से लेकर सरकारी नीति निर्माताओं व पढ़े-लिखे तथा जागरूक कृषकों का दायित्व बनता है कि प्रकृति से जुड़ी किफायती जैविक कृषि के सफल मॉडल देश के कोने-कोने में खड़ा करें और स्वस्थ एवं जैविक उत्पाद जनता के लिए सुलभ कराएँ।

इसके लिए आवश्यकता साहसिक पहल की है। यदि ऐसे मॉडल सफल होते हैं, तो उनका अनुकरण करते देर नहीं लगेगी। इस संदर्भ में जो भी चुनौतियाँ व समस्याएँ हैं, इन पर विचार करने की आवश्यकता है।

कृषि, ग्रामीण विकास, स्वास्थ्य संचार, पर्यावरण संरक्षण, समग्र स्वास्थ्य से जुड़े संस्थानों से इस दिशा में विशेष शोध, अनुसंधान व साहसिक प्रयोगों की पहल की आशा की जाती है; क्योंकि उनके दिखाए पथ का सभी पालन करेंगे। कृषि एवं स्वास्थ्य संकट की गंभीरता को देखते हुए यह भी एक युगधर्म से कम नहीं है। □

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

भगवद्भक्ति का परिणाम



परमभक्त, परमसंत व महाकवि श्री जयदेव जी का जन्म बंगाल के वीरभूमि जनपद के केंदुबिल्व नामक ग्राम में लगभग 600 वर्ष पूर्व हुआ था। माता-पिता के परलोक सिधार जाने से वे बाल्यकाल से ही परमपिता, परब्रह्म परमेश्वर को ही अपना सर्वस्व मानकर उनकी भक्ति करने लगे। पूर्व संस्कार के कारण विधाध्ययन व भगवद्भक्ति के प्रति उनमें नैसर्गिक अनुराग था। कष्टों और संघर्षों में भी विधाध्ययन और भगवद्भक्ति के प्रति उनकी प्रीति, अनुरक्ति कभी कम न हुई, बल्कि बढ़ती ही गई।

वे हर पल प्रभुकृपा को अपने जीवन में अनुभव करते थे। बाल्यकाल से ही भगवान श्रीकृष्ण के प्रति उनकी निश्छल भक्ति अब प्रगाढ़ होने लगी थी। उनके जीवन में कई ऐसी घटनाएँ घटती रहीं, जिससे उन्हें भगवान श्रीकृष्ण की कृपा का एहसास व आभास होता। वे अब बड़े हो चले थे, पर उनकी भगवद्भक्ति, भगवदुपासना में कभी रिक्तता अथवा अनियमितता नहीं आई। वे अविराम भक्ति करते रहे।

यह सच भी है कि उपासना में नित्यता, निरंतरता, नियमितता से ही उपासना में, भगवद्भक्ति में प्रगाढ़ता आती है, परिपक्वता आती है और तभी भक्ति फलीभूत होती है, तभी भक्ति फलदायी और प्रभावी होती है और भक्त को सच्ची भक्ति का मधुर फल भगवद्दर्शन एवं ब्रह्मानंद के रूप में प्राप्त होता है।

भगवदुपासना में यदि नित्यता, नियमितता, निरंतरता, गतिशीलता, धैर्य, संयम, श्रद्धा व विश्वास न हो तो उपासना फलीभूत नहीं होती और उपासक को निराशा ही हाथ लगती है और उपासना फलीभूत होगी भी तो कैसे?

नियमित रूप से खाद-पानी देने व देख-भाल किए जाने पर ही तो एक छोटे से बीज से एक नन्हा-सा पौधा अंकुरित होता है, फिर वही पौधा वृक्ष बनता है, फिर उस वृक्ष में पुष्प और फल लगते हैं। भक्ति भी वैसी ही है, जो नित्य देख-भाल किए जाने पर ही अंकुरित होती है, वृक्ष बनती है और सुगंधित पुष्पों व फलों से भर आती है और साधक व भक्त के जीवन को निहाल कर देती है।

श्री जयदेव जी की भगवद्भक्ति भी अब बीज से नन्हे पौधे और नन्हे पौधे से वृक्ष बन चुकी थी, उसमें प्रेम, मधुरता, आनंद के सुगंधित पुष्प और ऋद्धि-सिद्धियों के मधुर फल लग चुके थे, पर निष्काम और निश्छल भक्त श्री जयदेव जी को ऋषि-सिद्धियों की नहीं, वरन मात्र भगवान को पाने की प्यास थी।

भगवान को पाने की व्यग्रता के कारण ही एक दिन वे घर-द्वार छोड़कर अपने गाँव के पराशर नामक व्यक्ति को साथ लेकर पुरी की ओर चल पड़े। वे अपने हृदय में भगवान की मधुर मनोहर छवि का ध्यान-स्मरण करते हुए, सृष्टि के कण-कण में भगवान की उपस्थिति का आभास करते हुए, भगवान के दिव्य नाम का स्मरण-जप करते हुए, भगवद्भजन करते हुए अपने मार्ग पर बढ़ते जा रहे थे।

भीषण गरमी पड़ रही थी, पर फिर भी भगवान के प्रेम में मस्त, मग्न श्री जयदेव आगे बढ़ते जा रहे थे। बहुत दूर जाकर उन्हें जोर की प्यास लगी, पर रास्ते में कहीं जल नहीं मिला। अचानक गरमी

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

और प्यास के मारे वे मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़े तभी सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, भक्तवत्सल भगवान श्रीकृष्ण बालक के वेष में प्रकट हुए और मूर्च्छित पड़े श्री जयदेव को कपड़े से हवा की और मधुर जल व दुग्ध पिलाया और तत्पश्चात मार्ग बताकर उन्हें शीघ्र ही पुरी पहुँचा दिया। पुरी में भगवान के विग्रह में उन्हें साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण की उपस्थिति का आभास हुआ। भगवान का प्रत्यक्ष दर्शन कर वे हर्षित और रोमांचित हो उठे।

भगवान के प्रेम में मग्न होकर वे सदा ही भगवान का नाम-गान व स्तुति-गान किया करते थे। एक दिन भावावेश में, भगवान के प्रेम में प्रेमोन्मत्त श्री जयदेव ने देखा मानो चारों ओर दिव्य पर्वत शृंखलाएँ अपना स्वर्गीय सौंदर्य बिखेर रही हैं। पर्वत के नीचे कल-कल करती हुई कालिंदी बह रही थी। यमुना-तीर पर कदंब के पेड़ के नीचे भगवान श्रीकृष्ण मुरली हाथ में लिए मुस्करा रहे हैं। यह दृश्य देखते ही उनके मुख से दिव्य व मधुर भगवद्गीत प्रस्फुटित हुआ।

बाद में यह भगवद्गीत ही 'गीत-गोविंद' महाकाव्य के रूप में जगत् विख्यात हुआ। भगवान श्रीकृष्ण, श्रीगोविंद के मधुर चरित रस से भरे इस काव्य को उन्होंने भगवान श्रीगोविंद को ही समर्पित किया और उसे 'गीत गोविंद' नाम दिया। कहते हैं भगवद्भक्ति के मधुर रस से भरे उक्त ग्रंथ को

भगवान श्री जगन्नाथ जी ने अपनी छाती से लगा लिया था और तभी से वहाँ के राजा ने मंदिर में नित्य गीत गोविंद के गान की व्यवस्था की, जो आज भी जारी है।

इस प्रकार श्री जयदेव जी के जीवन में ऐसी अनेकों अलौकिक व दिव्य घटनाएँ घटीं। भगवान ने उन्हें कई बार अपनी मधुर छवि के दर्शन कराए। उनकी पत्नी श्री पद्मावती को भी भगवान के दिव्य दर्शन प्राप्त हुए।

जीवन के उत्तरार्द्ध में श्री जयदेव जी अपनी धर्मपरायण पत्नी पद्मावती और भक्त पराशर निरंजन आदि को साथ लेकर वृंदावन में ही वास करने लगे और वहाँ नित्य भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति करते हुए उनकी मधुर लीलाओं को देख-देखकर परमानंदित होते रहे। कहते हैं कि वृंदावन का वास करते हुए वृंदावन में ही वे सपत्नीक देह त्यागकर भगवान के दिव्य व परमधाम गोलोक पधार गए।

सचमुच श्री जयदेव जी का जीवन चरित्र भक्ति के उच्च क्षितिज में उदीयमान उस पूर्णिमा के चाँद की तरह है, जिससे भगवद्भक्ति का मधुर व शीतल प्रकाश नित्य झर रहा है और वह पुण्य व दिव्य प्रकाश निश्चित ही साधकों व भक्तों के मनोमालिन्य को धोकर उनके हृदय को प्रकाशित, आनंदित और शीतल करने वाला है। □

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

ब्रह्म पर्व-श्रावणी पर्व



हमारी संस्कृति पर्व-त्योहारों की संस्कृति है। यहाँ वर्षपर्यंत प्रत्येक दिन-तिथि में कोई-न-कोई पर्व, व्रत, उत्सव, त्योहार, जयंती आदि की अटूट शृंखला है। इनमें भारतीय समाज, सभ्यता, संस्कार और संस्कृति के उदात्त जीवनमूल्यों की प्रेरणा और शुभ संदेश सन्निहित हैं, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते हुए इस आधुनिक युग में भी बने हुए हैं।

इतना अवश्य हुआ है कि आधुनिकता के प्रभाव से हमारे पर्व-त्योहारों का स्वरूप कुछ बदलता-सा जा रहा है, परंतु उनके पीछे के आदर्श और उद्देश्य यथावत् हैं। सभी पर्व-त्योहारों के उद्देश्यों को मार्मिक दृष्टि से देखें तो यही तथ्य सामने आता है कि इनमें मानव, प्रकृति और परमात्मा के अंतर्संबंधों का विकास और अंतस्थ भावनाओं-संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का मर्म अंतर्निहित है।

पर्वों की इस अटूट शृंखला में श्रावणी और रक्षाबंधन पर्व का महत्वपूर्ण स्थान है। श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन ही ये दोनों पर्व मनाए जाते हैं। इस वर्ष यह पर्व 19 अगस्त श्रावण सोमवार को मनाया जाना है। हमारे शास्त्रों में इस पर्व की बड़ी महिमा और महत्ता बताई गई है।

इसे सृष्टि का जन्मोत्सव पर्व भी कहा जाता है; क्योंकि श्रुतियों के अनुसार इसी दिन परमपिता परमात्मा की स्फुरणा से 'एकोऽहं बहुस्याम्' का संकल्प साकार हुआ था। परमात्मा और उनकी आद्यशक्ति प्रकृति से ही इस बहुआयामी सृष्टि ने जन्म लिया है। परब्रह्म परमात्मा के संकल्प से जन्मी इस सृष्टि के भरण-पोषण और कल्याण के निमित्त जो ब्रह्म के सहयोगी बनते हैं, उन्हें ब्राह्मण

की संज्ञा दी जाती है। श्रावणी पर्व ऐसे ही ब्राह्मणत्व के लिए संकल्पित होने का उपदेश देता है। ब्रह्म की आराधना ब्राह्मणत्व धारण करके ही सार्थक होती है, इसलिए इस पर्व को ब्रह्म पर्व भी कहा जाता है।

सनातन परंपराओं के विज्ञ लोग यह भली भाँति जानते हैं कि श्रावणी के इस महापर्व में जीवन की अंतः-बाह्य शुद्धि-शुचिता के लिए प्रायश्चित्त विधान और जीवनमूल्यों-आदर्शों के पोषण-संरक्षण का संकल्प जुड़ा है। अंतःशुद्धि के लिए ज्ञान, बाह्य शुद्धि के लिए दशस्नान आदि का विधान है।

ज्ञान के स्रोत गुरुजन, ऋषि-मुनि, ब्राह्मण, तत्त्ववेत्ताओं से आत्मबुद्धि के लिए संकल्पित होने तथा अपने संकल्प की सुदृढ़ता के लिए रक्षासूत्र धारण करने की पावन परंपरा है। मनुष्य की अंतरात्मा को पवित्रता की ओर उन्मुख कर परमात्मा का बोध करा देने वाले ज्ञान के प्रति कृतज्ञता और प्रतिबद्धता की यह अनूठी ऋषि परंपरा है।

इसके साथ ही तीर्थ सेवन, विशेष कर्मकांड, हेमाद्रि संकल्प, तर्पण आदि के माध्यम से मानवीय चरित्र में आई त्रुटियों का प्रायश्चित्त एवं श्रेष्ठ आदर्शों, सत्कर्मों, मूल्यों-मर्यादाओं का पालन कर जीवन की सार्थकता का पावन संकल्प इस पर्व के साथ जुड़ा हुआ है।

'ज्ञान' भारतीय संस्कृति में सर्वोपरि तत्त्व है और इसका आदिस्त्रोत वेद हैं। प्राचीनकाल में ऋषिगण श्रावणी से ही वेदपारायण आरंभ करते थे, जिसे 'उपाकर्म' कहा जाता था। ज्ञान और ज्ञान को प्राप्त कराने वाले आप्तपुरुषों के प्रति कृतज्ञता,

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

श्रद्धा को अर्पण कर उनके अनुशासन को शिरोधार्य कर सूत्र रूप में प्रतिबद्धता दरसाई जाती थी। प्रतिष्ठित गुरुकुलों, आश्रमों, गुरुजनों में यह परंपरा आज भी देखी जा सकती है।

श्रावणी के दिन विशिष्ट कर्मकांड भी संपन्न किया जाता है। इसमें यज्ञोपवीत परिवर्तन, शिखासिंचन एवं प्रायश्चित के रूप में हेमाद्रि संकल्प इस पर्व में अभिन्नता से जुड़े हैं। यज्ञोपवीत के माध्यम से कर्तव्यनिष्ठा और शिखा के माध्यम से विवेकशीलता के लिए व्रती हुआ जाता है। पाप-निवारण एवं चारित्रिक शुचिता के लिए हेमाद्रि संकल्प किया जाता है।

इसमें पूर्वकृत्यों के प्रायश्चित के साथ-साथ भविष्य में पातक कर्मों से बचने, चोरी-हिंसा, निंदा न करने तथा सत्कर्म और सदाचरण करने का संकल्प लिया जाता है। इसे प्रायश्चित संकल्प भी कहा जाता है; क्योंकि इसके अंतर्गत ज्ञात-अज्ञात अनेक पापों-दुष्कर्मों का नामोल्लेख कर उनसे मुक्ति पाने की कामना की जाती है और मिट्टी, गाय के गोबर, भस्म, पंचगव्य, अपामार्ग, कुशयुक्त जल, दूर्वा आदि से स्नान किया जाता है।

ये सभी स्वास्थ्यवर्द्धक और रोगनाशक सर्वशुद्धि देने वाली चीजें कही गई हैं। स्नान के पश्चात देवपूजन, ऋषि पूजन कर आत्मशुद्धि और आत्मशांति की कामना की जाती है तथा अग्निहोत्र, हवन आदि संपन्न कर सूर्य को अर्घ्य समर्पित किया जाता है।

श्रावणी पर्व को मनाने की आदर्श प्रक्रिया यही है कि इस दिन की पुण्यवेला में यथासंभव कर्मकांड के विधानों को पूरा करते हुए, स्वयं में आत्मशुद्धि के लिए सद्गुणों को अपनाने के लिए संकल्पित हुआ जाए। उल्लेखनीय है कि युगतीर्थ शांतिकुंज और देश-विदेश के हजारों गायत्री शक्तिपीठों, प्रज्ञापीठों पर विधि-विधानपूर्वक इस महापर्व को मनाने की सुदीर्घ परंपरा है।

इस पर्व के उपलक्ष्य में परमपूज्य गुरुदेव के निर्देशानुसार जिन प्रमुख कर्मकांडों को संपन्न किया जाता है, वे हैं—षट्कर्म, तीर्थ आह्वान, हेमाद्रि संकल्प, दशस्नान, यज्ञोपवीत परिवर्तन, तर्पण और अर्घ्यदान।

इन कर्मकांडों के साथ इनके पीछे तत्त्वदर्शन को भी आत्मसात् कराने की प्रक्रिया अपनाई जाती है, ताकि श्रावणी पर्व का यथार्थ प्रयोजन पूर्ण हो सके।

ज्ञान, सत्कर्म और संस्कारों के लिए संकल्पित करने वाले श्रावणी उपाकर्म के साथ ही इस दिन हमारे सांस्कृतिक प्रतिमान का विशिष्ट पर्व रक्षाबंधन भी मनाया जाता है। इसमें समता, एकता, संरक्षण, स्नेह के साथ-साथ भाई-बहन के पवित्रतम संबंध को प्रगाढ़ता देने वाली भावनाएँ प्रस्फुटित होती हैं। भावना के सूत्र बड़े सूक्ष्म और प्रगाढ़ होते हैं। इतिहास गवाह है कि रक्षाबंधन के पर्व ने धर्म, रक्त, भाषा, समाज और जातीयता की सीमाओं से परे लोगों को अटूट भावनात्मक बंधनों में बाँधा है।

इस पर्व के संबंध में अनेक पौराणिक आख्यान एवं कथानक भी प्रचलित हैं। इनमें से एक द्रौपदी द्वारा भगवान कृष्ण को रक्षासूत्र बाँधकर रक्षा का वचन माँगने वाले दृष्टांत से हम-आप सभी परिचित हैं।

ऐसे ही इस पर्व से अनेक इतिहास कथाएँ भी जुड़ी हैं। ऐसे सैकड़ों विवरण प्राप्त होते हैं, जो यह दरसाते हैं कि रक्षाबंधन कई युगों से राष्ट्रीय व सामाजिक मर्यादाओं में बाँधने तथा बहनों की अस्मिता की सुरक्षा हेतु संकल्पित होने का महापर्व रहा है।

वर्तमान समय में भी यह पर्व अद्यतन अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है। भाई-बहनों के पवित्र स्नेह-सूत्र के प्रतीक रूप में यह भारतीय संस्कृति के दिव्य आदर्शों का परिचय कराता है।

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

जीवनमूल्यों के अतिशय अवमूल्यन के दौर में भी यह पर्व नारी गरिमा को खतरे से बचाने हेतु संकल्पित बने रहने का संदेश देता है। विश्व समुदाय के लिए यह आदर्श प्रस्तुत करता है कि नारी जाति के प्रति सम्मान और पवित्र भाव की दृष्टि रखने में ही व्यक्ति, समाज एवं संस्कृति का उत्थान निहित है। यह कहा जा सकता है कि संस्कार और संवेदना से संयुक्त यह पर्व हमारे सामाजिक जीवन में प्रतिवर्ष साहस, शक्ति और उल्लास का संचार करने प्रस्तुत होता है।

अब हमें इस पर्व की पावनता और उदात्त भावनाओं को बनाए रखने के लिए जागरूक बनने-बनाने की भी आवश्यकता दिखाई देती है; क्योंकि वर्तमान की उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों ने इस महापर्व को कलुषित करना आरंभ कर दिया है। नारी गरिमा को संस्कार, सम्मान और संवेदना के स्थान पर रूप, सौंदर्य और दिखावटीपन से परिभाषित किया जाने लगा है।

भाइयों की कलाई में बँधने वाले रक्षासूत्र का औपचारिक स्वरूप मात्र रेशम की रंगीन-महँगी डोरियों के रूप में सिमटता जा रहा है और इसके पीछे का उद्देश्य, संकल्प और भावनाएँ उपेक्षित होती दिखाई देती हैं। इससे पहले कि यह प्रचलन समूचे समाज में एक फैशन मात्र बनकर सामने आए, इस त्योहार की क्रियात्मकता और भावना को जीवंत बनाने का प्रयास हर ओर से किया जाना चाहिए।

यह नारी की अस्मिता और अस्तित्व से जुड़ी पावन परंपरा है। प्रत्येक भाई अपनी बहन की रक्षा की जिम्मेदारी उठा ले और परिवार एवं समाज भी नारी गरिमा के प्रति सम्मान का भाव रखने लगे तो वर्तमान परिदृश्य में दिखाई पड़ने वाली नारी शोषण व अत्याचार की घटनाओं में काफी कमी आ सकती है।

भावी पीढ़ी और हमारे युवाओं तक यह संदेश पहुँचाने का समय है कि रक्षाबंधन के सूत्रों में हमारे

देश, धर्म, समाज और संस्कृति की मर्यादाएँ और मूल्य समाहित हैं।

इनकी रक्षा के लिए प्रत्येक व्यक्ति को संकल्पित व प्रतिबद्ध होने की आवश्यकता है। नारी के प्रति बहन, पुत्री और माता की दृष्टि से ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का चरित्र गौरवान्वित रहा है और रहेगा। आजकल कला व व्यवसाय के नाम पर नारी के श्रृंगार और सौंदर्य का जिस प्रकार बाजारीकरण करने की कुचेष्टाएँ की जा रही हैं, वह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है।

ऐसी दुष्प्रवृत्तियों-अपसंस्कृतियों को रोकने-मिटाने की प्रेरणा भी इस महापर्व में समाहित है। आधुनिकता के दौर में ऋषि चिंतन से प्रसूत इस महापर्व को मूल्यनिष्ठ बनाकर नई गरिमा व नया अर्थ देने की आवश्यकता है।

बहनें भी, जब भाइयों की कलाई में रक्षासूत्र बाँधें तो उनसे सिर्फ अपनी सुरक्षा और सम्मान का वचन न लें अपितु समस्त नारी शक्ति के सम्मान का वचन लें। ऐसा करके इस पर्व के उद्देश्य को और अधिक व्यापक व सार्थक बनाया जा सकता है।

श्रावणी और रक्षाबंधन पर्व के दिन ही प्रकृति के आँचल से सृष्टि प्रकट हुई थी, अतः इस दिन वृक्षारोपण, हरीतिमा-संवर्द्धन द्वारा माता प्रकृति की आराधना और उसके संरक्षण के प्रति संकल्पित होने का भी विधान जुड़ा है।

ऐसे में इस पर्व के दिन जब आचार्यगण अपने यजमानों को रक्षासूत्र बाँधें अथवा बहनें अपने भाइयों को, इस स्नेह बंधन की प्रगाढ़ता के लिए वृक्षारोपण अवश्य करें। प्रकृति-पर्यावरण संरक्षित और समृद्ध हो, व्यक्ति कर्तव्यनिष्ठ और चरित्रवान बने, समाज संस्कारित हो तथा नारी जीवन की पवित्रता व अस्मिता सुरक्षित रहे—यही इस महापर्व का पावन उद्देश्य है।



► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

मानव जीवन का सर्वोच्च फल



दिव्यता का अर्जन जिसे कहते हैं वह एक ऐसी निस्पृह अवस्था है, जिसमें त्याग-चिंतन का बाहुल्य रहता है। जिसके बाद किसी भी अन्य चीज की प्राप्ति शेष नहीं रहती, उसे परमात्मा कहते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार जो कुछ पाने योग्य है, वह किसी वस्तु की प्राप्ति नहीं, बल्कि अपनी आंतरिक दिव्यता की प्राप्ति ही है, जो अंतरात्मा से जुड़ने पर साधक को मिल पाती है।

जब मनुष्य अपनी केंद्रीय आवाज को सुनना सीख जाता है, तो एक तो उसे बाह्यजगत् की गतिविधियों से अत्यधिक प्रभावित नहीं होना पड़ता तथा दूसरा उसका विकारमुक्त चिंतन स्वतः उसे दिव्यता को विकसित करने का पथ दिखा देता है। हममें से जो समझदार हैं वे इस दिव्यता के विकास को प्राथमिकता देते हैं, उसके अतिरिक्त जिन्हें लोभ एवं मोह की क्रीड़ा ने घेर लिया हो वे कुछ भी कर लें, उनका चित्त सदैव अशांत तथा उपद्रवी ही रहेगा।

जिनके जीवन में दिव्यता है, वे धन्य हैं और जो उसे न पा सकें, उन्हें कंटकाकीर्ण पथ पर विषमताओं से ग्रस्त रहना पड़ता है। जो सतर्क हैं, वे परिस्थितिजन्य दोष-दुर्भावों से प्रभावित नहीं होते, ऐसे लोग जीवन में सुख-शांति भी पाते हैं और श्रेय के पथ पर अग्रसर हो जीवन को प्रगतिशील बनाते हैं।

जिनका मन विषयों की क्रीड़ा में नहीं रमता, एकत्व जिनके स्वभाव में निस्पृह हो गया हो, जो विचारों से सशक्त एवं आत्मा से पूर्ण स्वतंत्र बन गए

हों, ऐसे लोग वास्तव में जीवन-क्रांति के प्रणेता एवं अंधकार से घिरी मानवता के समक्ष, एक प्रकाश का उदाहरण बन बैठते हैं।

स्वार्थ मनुष्य का स्वभाव है, परंतु उसे निश्चित ही आत्मा के दिशाकोण से होना चाहिए, जितना यह स्वार्थ आत्मा के अनुवर्ती होता जाएगा, उतना जीवन में कम क्लेश एवं वास्तविक शांति का विकास संभव हो जाएगा। जिसने जीवन में दुःखों को सहने की कला सीख ली, जो पूर्ण निस्पृह हो गया, जिसे भय, आसक्ति, प्रलोभन एवं दीर्घसूत्रीयता से छुटकारा मिल गया हो, जो परमात्मा के दिव्य प्रकाश के आलोक में सुख-शांति एवं चैन से जीना सीख गया हो, जिसे रागजनित ममता-मोह से एवं दुःखों के परिणामस्वरूप भय-आसक्ति इत्यादि से कुछ वास्तविक संबंध न रह गया हो, वही व्यक्ति धन्य है तथा उसका जन्म लेना सार्थक है।

यह दिव्यता तभी फलित हो सकती है, जब पूर्ण रूप से स्वार्थ त्याग एवं विचारों में निस्पृहता का विकास कर लिया गया हो। अपना आत्म-संतुलन जिस दिन बाह्य वस्तुओं के संपर्क से अप्रभावित रहने लगे एवं जिज्ञासा अंतः के शोधन में ही जा लगे, तो समझ जाना चाहिए कि जीवन में सच्ची शांति एवं आत्मप्रसन्नता का भाव उमड़ पड़ा है।

ऐसा मनुष्य इस प्रकार का भाव रखता है कि जब सोच अपनी नहीं तो प्रयत्नपूर्वक विचार का क्या प्रयोजन हो सकता है? जब भावनाएँ अपनी

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

नहीं तो उनमें आसक्ति किस बात की ? जब कर्म प्रकृति की महती शक्ति से होते हैं तो उन्हें कर्त्तापन के अहंकार से करने का क्या प्रयोजन हो सकता है ? जब सच्चाई अपने साथ है तो चित्त की अशांति के मूल कारण अज्ञान को क्यों फुसला के बुलाया जाए ?

होगा, क्योंकि इसके बाद कुछ पाना शेष नहीं रह जाता एवं मनुष्य का जीवन दिव्यता के संसर्ग से निरंतर ऊँचा ही उठता जाता है एवं पतन का कोई मार्ग शेष नहीं रहता। यह तभी होता है, जब उतनी उच्चकोटि की पवित्रता, उतना साहस एवं उतनी निर्मलता मनुष्य ने विकसित कर ली हो तथा

एक तपस्वी ने भगवान सूर्य को प्रसन्न करने के लिए घनघोर तपस्या आरंभ की। घोर तपस्या का सत्परिणाम भी मिला। सूर्यदेव प्रसन्न हुए और उसके सम्मुख प्रकट हुए। वरदान माँगने का समय आया तो तपस्वी ने भगवान सूर्य से एक ऐसे अस्त्र की कामना की, जिसे कोई पराजित न कर सके।

[illegible]

कैसे पहचानें स्वधर्म

मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है, लेकिन कर्मों के फल के चुनाव में उसे कोई सुविधा नहीं। व्यक्ति अच्छे-बुरे जैसे भी कर्म करता है, उसी के अनुरूप उसे अच्छे-बुरे फल देर-सवेर भुगतने ही पड़ते हैं। यह इस कारण है कि ब्रह्मांड का संचालन, सर्वशक्तिमान ईश्वर के बनाए नियमों के अनुरूप हो रहा है, जिसमें कर्मफल-व्यवस्था प्रमुख है, जो ईश्वर की स्व-संचालित सृष्टि के मूल में सक्रिय एक अचूक एवं अटल विधान है। यहाँ अच्छे कर्मों का पुण्यफल नाना रूपों में सुख, संपदा और अनुकूलताओं के रूप में मिलता है तो वहीं बुरे कर्मों का फल नाना प्रकार के दुःख, कष्ट, रोग एवं प्रतिकूलताओं के रूप में मिलता रहता है।

वस्तुतः ईश्वरीय न्याय-व्यवस्था अचूक है और ईश्वर से कुछ छिपा भी नहीं है। हमारा हर शब्द, विचार और कर्म शास्त्रों में वर्णित चित्रगुप्त द्वारा दर्ज किया जाता है; जिसे मनोविज्ञान की भाषा में कहें तो ये सब अवचेतन मन की गहराइयों में अंकित होते रहते हैं।

जब बुरे कर्मों का बोझ बढ़ता है, तो इसका दबाव तन-मन पर पड़ता है और नाना प्रकार की आधि-व्याधियों तथा संकटों के रूप में ये जीवन में प्रकट होते रहते हैं और कई बार मिलकर जीवन को नरकतुल्य बना देते हैं। यदि इनका परिमार्जन नहीं किया गया तो ये जीवन की महायात्रा के अगले पड़ाव में दुर्गति का भी कारण बनते हैं।

अतः इस लोक-परलोक में सुख-शांति एवं सद्गति के अभीप्सु व्यक्तियों को अपने जीवन के सुख-चैन को हरने वाले नकारात्मक कर्मों की

पहचान आवश्यक हो जाती है, जिनके प्रति प्रायः उपेक्षा का भाव रहता है और हलके व उथले कर्मकांडीय उपचारों एवं ईश्वर की खुशामद-मनुहार जैसे कृत्यों के माध्यम से जीवन में सकारात्मक परिणामों की अपेक्षा की विडंबना चलती रहती है, जिसमें अधिकांशतः निराशा ही हाथ लगती है और व्यक्ति जीवन का परिष्कार करने के बजाय जाने-अनजाने हेय कर्मों में ही लिप्त रहता है।

अपने स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रखना और स्वयं को नुकसान पहुँचाना एक तरह से पापकर्म ही माना जा सकता है, जिसके अंतर्गत आहार-विहार का असंयम, नशा, धूम्रपान, शराब, मांसाहार जैसे अभक्ष्य आहार का सेवन शामिल है। श्रम से जी चुराना, श्रम का सम्मान नहीं करना, कामचोरी, व्यायाम नहीं करना तथा आलस्य में समय बरबाद करना—ये सभी शारीरिक स्तर पर व्यक्ति को अधोगति की ओर ही ले जाते हैं। जीवन को राग-रंग तथा मौज-मस्ती में व्यर्थ गँवाना भी कर्मों को बिगाड़ने जैसा ही काम है।

अपने स्वधर्म को पहचानने की चेष्टा नहीं करना भी एक तरह का पापकर्म ही है, जिसका दंश व्यक्ति जीवनभर भोगता रहता है। इसको पूरा नहीं कर पाने का मलाल जीवन भर व्यक्ति को अशांत-क्लांत और दुःखी बनाए रखता है। इसी कारण व्यक्ति अपने कर्तव्यों से विमुख रहता है तथा जिम्मेदारियों से मुँह मोड़ता रहता है।

इसी का विस्तार माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा, बच्चों एवं आश्रितों के प्रति कर्तव्यों के प्रति ध्यान नहीं रखने के रूप में होता है। कोई आश्चर्य नहीं

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

कि स्वयं से क्षुब्ध, अपने जीवन से त्रस्त ऐसा व्यक्ति अपनी वाणी-व्यवहार से दूसरों को मानसिक आघात देता हो, भावनात्मक चोट पहुँचाता हो और स्वयं ही दुःख का कारण बनता हो—जो सम्मिलित रूप से उसके जीवन में कर्मों की पहेली को उलझाने वाले ही सिद्ध होते हैं।

इसी कारण व्यक्ति परिस्थितियों का सामना नहीं कर पाता है: इनमें निहित सत्य का सामना करने से कतराता है तथा जीवन की समस्याओं से अच्छी तरह से नहीं निपट पाता है। साथ ही वह परिवार में बच्चों को अच्छे संस्कार नहीं दे पाता है जिससे बच्चों का बिगड़ना सुनिश्चित हो जाता है, तथा पारिवारिक सुख-शांति के स्थान पर कलह-क्लेश तथा अशांति का वातावरण बन जाता है।

बाह्य जीवन में आंतरिक साहस के अभाव में व्यक्ति दुष्टता को बरदाश्त करता रहता है, सच को कहने तथा इसके पक्ष में खड़े होने की हिम्मत इसमें नहीं रहती तथा नकारात्मक व्यक्तियों के बुरे आचरण को सहन करना आदत बन जाती है। ऐसे में दुष्टता के हौंसलों को बढ़ावा देना भी पाप की श्रेणी में आता है।

इसके साथ दूसरों को बुरे कार्य या गलत राह के लिए उकसाना, भड़काना भी नीच कर्मों का ही कारण बनता है। नकारात्मक कर्म का सबसे घातक स्वरूप आत्महत्या जैसे जघन्य अपराध के रूप में आता है, जिसमें वह ईश्वर के दिए जीवनरूपी बहुमूल्य उपहार का अपमान करता है, जिसका भुगतान फिर कई जन्मों तक निम्नयोनियों में भटकते हुए, घोर आंतरिक यंत्रणा के रूप में भोगना पड़ता है।

इस तरह नकारात्मक कर्मों के बोझ के साथ यह सुरदुर्लभ जीवन बोझिल होने लगता है। इस बोझ से निर्भर होने का राजमार्ग सत्कर्मों की

पुण्य संपदा को सतत अर्जित करने का सचेष्ट प्रयास है, जिसके अंतर्गत इच्छुक व्यक्ति निम्न उपाय करें।

अपने स्वधर्म की खोज में नित्य कुछ समय लगाएँ और एक उद्देश्यपूर्ण जीवन जीने का ईमानदार प्रयास करें। अपने जीवन की विषम परिस्थितियों के लिए कभी दूसरों को जिम्मेदार न ठहराएँ और अपनी असफलता की जिम्मेदारी स्वयं लें। जीवन में समस्याओं से भागें नहीं, इनका सामना करें तथा इनको स्वीकार करें। मानकर चलें कि हर बाधा एक परीक्षा के रूप में कुछ सीख देने के लिए आई है, जिसकी कसौटी पर स्वयं का परीक्षण करते हुए, आवश्यक सबक लेते हुए भावी जीवन को और उत्कृष्ट बना सकते हैं।

इस तरह अपनी स्थिति को बदलने की सच्ची इच्छा रखें और इससे समझदारी के साथ निपटें। अपने छोटे-से-छोटे कर्म व भाव-चिंतन के प्रति भी सचेष्ट रहें और यदि कहीं कोई चूक हो रही हो तो इसका परिमार्जन करते हुए नित्य आंतरिक निखार लाएँ।

दूसरों से तुलना न करें। दूसरे क्यों सुखी, प्रतिभावान हैं, इसके पीछे निहित कारकों को खोजें व उनसे प्रेरणा लें और अपने स्वतंत्र विकास के प्रति सचेष्ट हो जाएँ। हर स्थिति में दूसरों की यथासंभव सहायता करें और अच्छे-से-अच्छा कर्म करते रहें। अपने मन को नियंत्रित रखें, अंतरात्मा की ध्वनि को सुनें और सन्मार्ग पर साहसिक कदम उठाते रहें।

वास्तव में दुःख, कष्ट एवं रोग जैसी विषमताएँ व्यक्ति के निखार के लिए आए दुर्लभ अवसर की तरह से होती हैं—जिनके माध्यम से जीवात्मा इस जन्म व पूर्वजन्मों के ऋण को तीव्रता से चुका सकती है।

जब हम अपनी समस्याओं का सामना इस समझ के संग बहादुरी और मुस्कान के साथ करते हैं, तो ईश्वरीय प्रयोजन का सहयोग करते हैं और अस्तित्व के साथ न्याय करते हैं। इसके बजाय जब हम शिकायत करते हैं, अपनी जिम्मेदारी नहीं लेते तथा परदोषारोपण करते हैं, तो कर्मों का बोझ और बढ़ता जाता है।

कभी-कभी लग सकता है कि कर्मों का हिसाब चुकाने की गति बहुत धीमी है, दुःख-कष्टों का कोई अंत नहीं हो रहा, लेकिन आत्मपरिष्कार का कार्य तब भी चल रहा होता है। ऐसे में समस्याओं का बहादुरी के साथ सामना करें, साहस और धैर्य के साथ इस मनोभाव में जिएँ कि आप समस्याओं से बड़े हैं। वे अधिक समय तक आपके समक्ष नहीं टिकने वाली। अँधेरी निशा के बाद शीघ्र ही सुबह आने वाली है।

यहाँ नकारात्मक तत्त्वों से सावधानी की भी आवश्यकता है; क्योंकि किसी को भी यह अधिकार या स्वीकृति नहीं दी जा सकती कि वह आपको नीचा दिखाए या अपराध बोध से ग्रस्त करे या आपकी मौलिक अद्वितीयता पर

प्रश्नचिह्न लगाते हुए आपको नकारात्मक भाव से भर दे। अतः अपने जीवन की सुख-शांति एवं स्वतंत्र विकास के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि नकारात्मक तत्त्वों की अनधिकार चेष्टाओं को स्वीकार न करें, सत्पात्रों से ही हृदय के भावों को साझा करें तथा जरूरतमंदों की सहायता करें।

जीवन की समस्याओं से निपटने का आध्यात्मिक तरीका यह है कि किसी को दोष नहीं दें, मन में मलाल न पालें और सकारात्मक बने रहें। जीवन में घट रही हर अच्छी घटना के लिए ईश्वर का धन्यवाद दें। बुरे समय को खुले दिल से स्वीकार करें। साथ ही सुख की घड़ी में यदि सजग रहेंगे, तो दुःख आने पर उनके पीछे निहित दैवी प्रयोजन को भी समझ पाएँगे और सही माने में जीवन का आनंद उठा सकेंगे। साथ ही जिन्होंने ज्ञात-अज्ञात रूप में सहायता की हो, उनके प्रति कृतज्ञता, धन्यवाद एवं प्रार्थना के भाव से भरे रहें। जितना हम प्रकाश की ओर बढ़ते जाएँगे, उतना ही अंधकार पीछे छूटता जाएगा और हम आलोकित पथ पर सदा आगे बढ़ रहे होंगे। □

“बरसात का मौसम आने वाला है, छत पर मिट्टी डाल देनी चाहिए।”—पत्नी ने पति को सुझाव दिया। पति आरामपसंद थे, सो बोले—“अभी ऐसी भी क्या शीघ्रता है, मिट्टी डालने में समय ही कितना लगता है।” पत्नी चुप हो गई।

कुछ दिन बाद आकाश में बदली छाने लगी तो पत्नी ने पति को पुनः याद दिलाया। पति बोले—“घुमड़ने वाले बादल बरसा नहीं करते। एक-दो दिन में मिट्टी डाल लेंगे।” कुछ देर बाद ही घनघोर वर्षा प्रारंभ हो गई और छत भरभरा कर गिर पड़ी।

पति भाग-भागकर मरम्मत की कोशिश करने लगा तो पत्नी ने उसे कहावत याद दिलाई—“काल करे सो आज कर, आज करे सो अब। पल में परलय होएगी, बहुरि करोगे कब?”

►‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

उत्कृष्ट जीवन की पहचान



जरा गंभीर होकर देखिए कि इनसान किन चीजों में व्यस्त है। कौन-सी आदतों को, ढरों को उसने अपना रखा है तथा कैसे वो अपने को बंधन में अनुभव कर रहा है। हमारी चेतना समान ही है बस, अंतर है तो उस बोध का, जो किसी मनुष्य को सही कार्य में लगाता है और किसी को व्यर्थ बातों और निष्क्रिय प्रयोजनों में।

चेतना का सिद्धांत कहता है कि हम सभी को उत्कृष्टता का पक्षधर होना चाहिए, सच्चाई एवं ईमानदारी से जीना चाहिए, परंतु हमारे विषय ऐसे हैं कि उन्हें यदि ठीक प्रकार समझा न जाए, उनसे निवृत्ति का उपाय न ढूँढ़ा जाए तो देखते-ही-देखते यह समाज पतन के गर्त में चला जाएगा। हमारे भीतर एक अबूझ तत्त्व है, जिसे अंतरात्मा कहते हैं, वह जिसकी सक्रिय है, वह भूलकर भी पाप और पतन के मार्ग में नहीं जा संकता।

ऐसा इसलिए क्योंकि अंतरात्मा की शक्ति-सामर्थ्य इतनी अधिक है कि उसे दबा पाना हमारे वासना के अतिरेक से क्षुब्ध मन के लिए संभव नहीं। अंतरात्मा एक महान तत्त्व है, शायद इस सृष्टि का सबसे निराला—उसे ही सक्रिय करने को अध्यात्म कहते हैं।

अब बात आती है कि आधुनिकी के इस दौर में, चलन की घुड़दौड़ के मध्य ऐसा क्या है जो मनुष्य को उन विषयों में लगाए है, जो उसके लिए कतई लाभदायक नहीं। पतन की सूची बड़ी लंबी है, कहाँ से शुरुआत की जाए। आप स्वयं ही समझ लीजिए कि क्या-क्या है, जो मानव चेतना को

गिराए है एवं इसके विकास का पथ अवरुद्ध किए है।

यही समझदारी होगी यदि हम यह पहचान लें कि अपने स्वभाव को दूषित विचारणाओं, अनुचित महत्वाकांक्षाओं तथा पतन की परिधिबद्ध मान्यताओं में लगाने से क्या होता है। मनुष्य का चित्त विकारग्रस्त होता है, उसका जीवन परावलंबी होता है तथा उत्कर्ष से कहीं दूर जा गिर पड़ता है। यही वर्तमान समय में मनुष्य की एक सबसे बड़ी समस्या है कि उसे सही विषय चुनना नहीं आता, उसका सारा-का-सारा समय व्यर्थ के असमंजसों में तथा अपने पतन के मार्ग पर जा लगता है।

ऐसा इसलिए; क्योंकि व्यावहारिक रूप से उसे यह शिक्षा नहीं दी गई कि सही विषय पकड़ा कैसे जाए। आत्मचिंतन और आत्मगौरव से रहित मनुष्य किस प्रकार अपनी बाहरी संभावनाओं में विचरण करता है तथा भीतर का विषय उसे ज्ञात नहीं होता, यही वर्तमान समाज एवं पीढ़ी का सबसे बड़ा दुश्चक्र है। आदतवश कोई यदि स्वेच्छा का गलत इस्तेमाल करे और परिणामस्वरूप वह पतन के मार्ग में जा गिरे और फिर उबरे नहीं तो इसे क्या कहा जाएगा ?

पहले तो यह पढ़ाई कराई नहीं जाती कि वातावरण के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना है, किन सूचनाओं को मन में रखना है, कैसा आचरण करना है। कौन-कौन से विषय हैं, जिन पर हमारा ध्यान जाना चाहिए तथा कैसे अपनी मनोभूमि को परिष्कृत बनाया जाए। समझदार मनुष्य

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

एक ही बात का ध्यान रखता है कि मुझे अंततः अपनी भलाई के मार्ग पर ही जाना है। मुझे परमात्मा के बताए मार्ग पर ही चलना है, यही मेरी नियति है एवं मेरा स्वभाव भी।

जब इस प्रकार की भाव-विचारणा हमारे भीतर जन्म लेती है तो एक व्यापक परिवर्तन होता है, जिसे कहते हैं आत्मपरिष्कार।

इस प्रकार का मनुष्य केवल महान एवं उदात्त भावना को ही ग्रहण करता है, उसका जीवन आत्मा की अमिट प्यास से तथा अमरता के सिद्धांत के अनुरूप चल पड़ता है। ऐसा मनुष्य फिर कभी विषय की क्रीड़ाओं को अपने अंतस् के महान चरित्र से खिलवाड़ नहीं करने देता। उसकी बेचैनी इस संसार से नहीं, यहाँ की दूषित मान्यताओं से नहीं, बल्कि सत्य से, आत्मा से एवं अपने हित में निरंतर आगे बढ़ने के प्रयत्न से होती है।

यही दैवी-मनोभूमि है एवं एक उन्नत जीवन का परिष्कार मार्ग भी। जो सोए हुए हैं, उन्हें जगाया

जाना है, आनंद की तृप्ति को वासना के अतिरेक से पूरा करना ही आज की विषय-क्रीड़ा का मूल आधार है। सच्चाई यह है कि मनुष्य ने उस ऊँची चीज की कीमत नहीं जानी है, जिसे आत्मा कहते हैं। वह मोबाइल फोन के गेम्स में नहीं, न ही वह टीवी पर दिखाए जा रहे अन्य नाटकों में।

जिसे जीवन से प्रेम हो वह एक बात सोचे, किस प्रकार प्रवाह में आनंद को विस्मित न होने दिया जाए, कैसे अपने मन का नियमन कर दुर्भावनाओं एवं दूषित-विषयों से बचा जाए। कैसे जीवन को महान बनाने वाले प्रयोजनों का, अपने जीवन की मूलभूत धरोहर आत्मसंपदा का संरक्षण किया जाए। कौन-सी विधि अपनाई जाए, किस चेष्टा को स्वीकारा जाए, कैसे अपने मनोभावों का दर्पण सत्य को बनाया जाए। कैसे जीवन की महान संपदा को अनुचित दिशा से मोड़कर सही दिशा में बढ़ाया जाए। यही हमारा चिंतन होना चाहिए तथा एक उत्कृष्ट जीवन की पहचान भी। □

जब बाबर ने अमीनाबाद को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया तो गुरुनानक और उनके शिष्य को भी जेल जाना पड़ा। कुछ दिनों के बाद बाबर अधिकारियों द्वारा नानक की आध्यात्मिक शक्ति के संदर्भ में सुनकर उनसे मिलने पहुँचा और उनसे भेंटस्वरूप कुछ माँगने को कहा। गुरुनानक बोले—“आदमी, आदमी को क्या दे सकता है? मुझे यदि कुछ माँगना ही होगा तो परमात्मा से माँगूँगा, जो मनुष्य तो क्या राजा तक को देता है।”

इतना सुनकर बाबर ने कहा—“तो आप ही मुझे कुछ दे दीजिए।” नानक बोले—“बाबर! इस संसार में कोई भी वस्तु अमर नहीं है। आपका या आपके पुत्रों का शासन भी तब तक रहेगा, जब तक उसका आधार प्रेम व न्याय बना रहेगा। धर्म शाश्वत है। अतः परवरदिगार के प्रति आस्था रखकर जीवन जियो। यही मेरा तुम्हारे प्रति उपदेश है।”

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◀

व्यक्तित्व की शुद्धता को मिटाता है योग



जब वास्तविक योग की परिभाषा विस्मृत हो जाती है, चिंतन-चरित्र दूषित एवं अपंग-सा हो जाता है तथा जीवन कलुषित आचरण लिए, किसी प्रकार साधना का ढोंग करता है तो उसे योग नहीं आडंबर कहते हैं। ऐसा क्यों हो रहा है? जिस योग विद्या को भारत की प्राचीन धरोहर तथा आत्मोत्कर्ष का राजमार्ग स्वीकारा गया, जिसे आधुनिक समय में अनेकों आचार्यों ने सम्मानपूर्वक विश्व के कोने-कोने में पहुँचाया, उसकी समझ एवं उसका ज्ञान यदि सबसे कम कहीं पर है तो वह भारतीयों में ही है।

थोथे-उथले चरित्र के ही योगी हमें मिला करते हैं, जिनका जीवन प्राणपण से किसी आदर्श की सेवा में जुट पड़े, जो स्वयं समर्थ हैं या दूसरों को उठाने का जिनका प्रयत्न है, ऐसे योगी-महात्मा विरले ही कहीं मिलेंगे। साधु-बाबाओं की कुटीरें खाली हैं इनसे, हिमालय पर्वत पर थोड़े-बहुत होंगे भी तो वे इस अधिकांश जनसंख्या का क्या भला करेंगे, हमें आदर्श चरित्र चाहिए, जो वास्तव में योगी कहलाएँ।

इस दृष्टि से सोचा जाए तो समाज के प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति योगी होना चाहिए, जिनका चरित्र ऊँचा हो, चाल-चलन सामान्य से परे ऐसे योगी चाहिए। फिर चाहे वो राजनीति में हों, कलाकार-वर्ग, संगीत-प्रेमी या शासन-प्रशासन के क्षेत्र में—उन्हीं की जरूरत इस समय इस समाज को है। जो योगी यह कहे कि मुझे तो अपना व्यक्तिगत हित देखना है, मुझे समाज से क्या मतलब? समझ

लीजिएगा वहाँ योग के नाम पर पाखंड हो रहा है, जो शारीरिक क्रियाएँ सिखाई भी जाती हैं, उन्हें यदि आत्मोत्कर्ष के प्रयोजन से न सिखाया जाए, चाल-चलन का अनुवर्ती बना जाए तो कैसा योग?

बिना श्रद्धा के न कोई योग घटित रूप लेता है और न उसका प्रसार सही रूप में हो सकता है। योगी की मानसिकता बड़ी ही उच्चस्तरीय होती है, उसे संतोषपूर्वक अपना गुजारा करने में कठिनाई नहीं होती। योगी किसी पहाड़ी पर नहीं आम जनमानस के मध्य में, उनकी ही तरह रहन-सहन करते पाए जाते हैं। झूठे योग ने भारत की प्रचंड आध्यात्मिक ऊर्जा एवं उसकी संस्कृति के महान वैभव को दूषित किया है तथा आज यदि भारत को पुनः जगना है तो योग की उस प्राचीन परंपरा को पुनर्जीवित करना होगा, जिसे दिव्यदर्शियों ने किसी आदर्श प्रयोजन के निमित्त स्वीकारा था।

वह योग था और आज योग के नाम पर बड़ा मजाक हो रहा है। योग वह नहीं, जो आप नित्य सवेरे उठकर किया करते हैं। न ही योग किसी पुस्तक में या खुले आकाश के नीचे बैठे किसी मंदिर में मिल जाता है। योग के लिए एक समर्थता चाहिए, एक सच्चाई, एक दृढ़ लगन जो अपने आदर्श के प्रति कर्तव्य का बोध कराए, मनोभूमि को सुधारे और जीवन को लघु से महान बनने की प्रेरणा प्रदान करे—यही योग है।

आज हमारा समाज योग की वास्तविक परिभाषा से अनभिज्ञ बना हुआ है। क्रिया है, पर तत्त्वदर्शन नहीं; पूजा है, पर उसमें वह भाव नहीं;

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

समारोह है, पर एकत्व की प्रेरणा नहीं। यहीं पर हमें योग नहीं वेदांत की आवश्यकता है, समाज को जगाने के लिए बढ़िया उपाय है वेदांत—जिसे ऋषियों ने उपनिषदों की वाणी में उल्लिखित किया तथा जो आज एक व्यापक स्वरूप लेने को तत्पर खड़ा है। योगी वही है, जो वेदांत की परिभाषा से परिचित हो, अन्यथा वो तो दिखने का योगी, क्रिया-अभ्यास का योगी, मंत्र-तंत्र वाला योगी बन जाएगा।

ऐसे योगी को भले ही समाज स्वीकार कर ले, पर भारतीय संस्कृति के नित्य गौरव में हम योगी उसे ही कहेंगे, जो उसकी समग्रता से परिचित हो। ऐसों को फिर योग क्रियाओं की आवश्यकता नहीं रह जाती।

आवश्यक है कि योग हो, पर भीतर वाला, उसके पश्चात चाहिए कर्म करने की दृढ़ लगन तथा अपने पुरुषार्थ से जमीन-आसमान को एक कर देने की प्रतिज्ञा-दुस्साहस। ऐसे व्यक्तियों को योगी कहा जाएगा, जिनका चरित्र उज्ज्वल हो, प्रतिभा प्रखर हो तथा आत्मा में महान स्वाभिमान एवं गौरव की भावना भरी हो।

योगी वही है, जो चाल-चलन से हटकर सोचे, जिसे दुनिया की वर्तमान परिस्थितियों के मध्य एक उत्कृष्ट-प्रेरणा प्राप्त हो, जो समष्टि के हित

का चिंतन कर सके। ऐसा योगी जहाँ भी होगा अपनी प्रतिभा से, अपने लगन एवं उत्साह से सभी को चमत्कृत कर देगा, पिछड़े हुआ को उठाएगा, समाज को नव-रूपांतरित कर देगा। योगियों की टकसाल खड़ी कर देगा एवं राष्ट्र-संस्कृति की सेवा में अपना जीवन समर्पित कर देगा।

हमें ऐसे ही तेज-हृदय एवं गुणवान योगियों की आवश्यकता है अन्यथा यह समाज तो कापुरुषों को ही योगी मान बैठेगा। जिसने कुछ नहीं किया और दो, चार अच्छे आसन लगा दिए, वह यदि योगी हो गया तब तो बड़ा संकट है। आज के आधुनिक और संपन्न युग में जिसकी समस्याएँ भी अगणित हैं, इसकी चेतना अभी उत्थान की प्रार्थी है और इस हेतु समाजसेवक योगियों की जरूरत है।

समाज को बदलना है तो योगियों को उत्पन्न करा जाए। विद्यालयों-महाविद्यालयों में इसे सही रूप में प्रस्तुत किया जाए तथा योग की अभिलाषा से सबको अवगत कराया जाए। योग वही, जो आत्मा की उपलब्धि करा दे और ऐसा केवल एक ही योग है—वह है व्यक्तित्व की क्षुद्रता को मिटा उसे महान-गौरवशाली बनाने वाला योग। उसी योग को जन-जन तक पहुँचाने वाले प्रयासों की आज जरूरत है। □

संत तुकाराम महाराष्ट्र के एक गाँव में रहते थे। दूर-दूर तक उनकी प्रसिद्धि थी। एक बार शिवाजी महाराज ने उनके लिए बहुत-सी बहुमूल्य वस्तुएँ भेंटस्वरूप भेजीं।

संत तुकाराम ने उन्हें वापस लौटाते हुए शिवाजी को पत्र लिखा—“महाराज! मेरे लिए तो अब सोना और मिट्टी एक समान हो गए हैं। जब से अपने प्रभु के दर्शन किए हैं, तब से त्रिभुवन का स्वामी हो गया हूँ। इन कंकड़-पत्थरों को वापस लौटा रहा हूँ।” तुकाराम का पत्र पाकर और उनके वैराग्य की सुधि पाकर छत्रपति शिवाजी से रहा न गया और वे संत तुकाराम के दर्शन करने उनके गाँव ही पहुँच गए।

आध्यात्मिकता का सार

अध्यात्म का अर्थ होता है वो सब कुछ, जो आत्मा को उत्थान प्रदान करे। आत्मा का उत्थान दो ही आधार पर हो सकता है, एक उसका व्यापकत्व, दूसरा उसका स्थितित्व। एक में हम चाहते हैं कि समूचे संसार में शांति, प्रज्ञा और आत्मोल्लास का वातावरण हो तो दूसरे में अपनी ही पीड़ा के जिस भार को ले के हम घूमते हैं, उसी से विमुक्त होने की प्रक्रिया सक्रिय रहती है।

अध्यात्म है आत्मा का गुण-कर्म-स्वभाव से ऊँचा उठना, आत्मा की अनंत सत्ता का व्यवहार जगत् में, इंद्रियों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्राप्त करना। आध्यात्मिक व्यक्ति किसी और का नहीं, बल्कि अपने भीतर की सत्य-वस्तु के साहचर्य में जीवन के गुणोत्थान की दिशा में बढ़ चलता है। जब वास्तविक जाग्रति के प्रतिचिह्न दिखाई देते हैं तो जीवन का कोई भी पक्ष आंतरिक एकत्व की भावना से अधूरा नहीं रह जाता एवं तब हमें भीतरी जाग्रति का फलित प्रयास बाह्य जगत् में दिखाई देने लग जाता है।

अपनी अहंमन्यता को गलाकर हम ईश्वर की दिव्य संतान तो कहलाते ही हैं, साथ में अपने एकाधिकार में शक्तियों का सुनियोजन एवं आत्मकृपा भी प्राप्त करते हैं। अपनी अंतरात्मा की प्रेरणा को सुनना ही अध्यात्म का मूर्त पक्ष है तथा इस दिशा में यदि हमें कोई सबल बनाता है, तो वह है आंतरिक साहस और विचार-बुद्धि। इनके अवलंबन से आध्यात्मिकता तो निभती ही है, साथ में विचार-परिष्कार द्वारा बहिरंग जीवन अत्यधिक परिष्कृत एवं उन्नत होता चला जाता है।

आध्यात्मिकता की कसौटी है अपने भीतरी द्वंद्वों से मुक्ति और पाप-ताप का नाश—इसकी प्राप्ति के उपरांत जीवन में एक अद्भुत क्रांति घटित होती है, जो हमें अधिकाधिक परिपक्व एवं आत्मा के सत्य के अनुशीलन में और अधिक समर्थ बनाती है।

यही आध्यात्मिकता का वह सार है, जिसे पनपाने पर विचार-निर्विकार एवं कर्म-अलिप्त होते हुए, मनुष्य को अधिक अंतर्ग्रही एवं द्वंद्वमुक्त बनाते हैं एवं तब जीवन की सभी कठिनाइयाँ

शुभैः प्रयोगैर्देवत्वं व्यामिश्रैर्मानुषो भवेत्।

—महाभारत वनपर्व 209/32

अर्थात् प्राणी शुभकर्मों से देवयोनि को प्राप्त होता है और मिले-जुले कर्मों से मनुष्ययोनि को प्राप्त होता है।

आत्मा की निर्मलता, तटस्थता एवं परिपूर्ण अंतरंगता का परिचय प्राप्त करती हैं। जीवन को अधिक सँवरा हुआ एवं संतोष से परितृप्त पाते हैं।

यही अध्यात्म है एवं इसे ग्रहण करके, किसी भी मनुष्य का किसी भी काल में अहित नहीं हुआ है तथा जो धन्य हुए हैं, वे जीवंत जाग्रत उदाहरण बनकर औरों को भी प्रकाशित करने में सफल हुए हैं। अतः इस आध्यात्मिकता को ग्रहण करिए एवं जीवन को दोषमुक्त कर, आंतरिक एकत्व की दिशाधारा तय कीजिए, जिससे संतोष एवं आनंद की प्राप्ति हो सके। □

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

गुरु बिन ज्ञान नहीं, नहीं रे



महर्षि शुकदेव, महर्षि वेदव्यास के अयोनिज पुत्र के रूप में प्रकट हुए थे। महर्षि वेदव्यास जी ने तेजस्वी पुत्ररत्न की प्राप्ति के लिए भगवान भोलेनाथ की घोर तपस्या की थी। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भोलेनाथ ने उन्हें तेजस्वी पुत्र प्राप्त होने का वरदान दिया था और उसी वरदान के परिणामस्वरूप श्री शुकदेव जी, श्री वेदव्यास जी के पुत्र के रूप में प्रकट हुए थे। कहते हैं कि जब श्री शुकदेव जी का जन्म हुआ था तो उनके शरीर से दिव्य व निर्मल ज्योति निकल रही थी।

उपनयन संस्कार हो जाने के बाद श्री शुकदेव जी, ब्रह्मचारी के रूप में तपस्या करने लगे। ज्ञान और वैराग्य की प्रतिमूर्ति श्री शुकदेव जी की अर्थ और काम के प्रति कोई आसक्ति थी ही नहीं। वे सिर्फ मोक्ष का ही चिंतन किया करते थे। एक दिन उन्होंने अपने ब्रह्मज्ञानी पिता से मोक्ष के विषय में कई प्रश्न किए।

सभी प्रश्नों का समाधान करने के पश्चात महर्षि वेदव्यास जी ने अपने पुत्र को उपदेश देते हुए कहा—“पुत्र! तुम भगवद्शरणागति करो। भगवान का ही चिंतन, मनन, ध्यान करो। यह मानव शरीर पानी के बुलबुले के समान है। यह आज है और कल नहीं रहेगा। इस नश्वर शरीर का कोई भरोसा नहीं। पता नहीं, कब इस शरीर का नाश हो जाए। जीवन के हर पल को तुम सच्चिंतन करते हुए व्यतीत करो। शरीर और संसार में कोई आसक्ति मत रखो। अनासक्त होकर अपने कर्तव्य का पालन करते रहो।”

वे आगे बोले—“पुत्र! संसार में सही माने में वे ही सुखी हैं, जिन्होंने भगवान का आश्रय ग्रहण कर भगवत्प्राप्ति की है, परमतत्त्व की उपलब्धि की है। हाँ, जीवन में तुम कभी भी कुसंग में मत पड़ना।

“तुम सत्संग में रहकर सदैव अपने परमलक्ष्य को याद रखना और उसकी प्राप्ति के लिए अपने तन-मन-आत्मा को पूरी तरह लगाए रखना। वीरता के साथ काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि शत्रुओं से बचे रहना और अपने मार्ग से कभी भी विचलित नहीं होना। परमात्मा सदैव तुम्हारे लिए सहायक हैं। परमात्मा तुम्हारी शुभेच्छा और सच्चाई को जानते हैं। वे ही कठिनाई में सदैव तुम्हारी रक्षा करेंगे।”

फिर वेदव्यास जी बोले—“पुत्र! तुम मिथिलानरेश जनक के पास जाओ और उनका सत्संग प्राप्त करो। उनका सत्संग परमतत्त्व की प्राप्ति में तुम्हारे लिए अवश्य ही सहायक होगा। वे ब्रह्मज्ञानी हैं, वे तुम्हारे संदेह को दूर कर तुम्हें स्वरूपबोध करा देंगे। तुम स्वभाव से जिज्ञासु हो, यह तुम्हारे लिए ज्ञानप्राप्ति में सहायक होगा। तुम बड़ी विनम्रता और श्रद्धा के साथ जाना। उन्हें नमन-वंदन करना। मिथिला नरेश से ज्ञानचर्चा करते समय तुम उनकी परीक्षा लेने का भाव-विचार अपने मन में बिलकुल भी नहीं रखना। तुम कुछ या बहुत कुछ जानते हो, इसका घमंड बिलकुल भी नहीं करना। तुम तितिक्षा करते हुए पैदल ही उनके पास जाना और उनकी आज्ञा का पालन करना।”

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◀

पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर श्री शुकदेव जी मिथिला की ओर चल पड़े। मार्ग की बाधाओं को पार करते हुए, अगणित कष्ट-कठिनाइयों को सहते हुए अंततः वे मिथिला नरेश के द्वार पर पहुँच गए। द्वारपालों ने इन्हें अंदर जाने से रोक लिया। द्वार पर रोक दिए जाने के बाद भी उनके मनोभाव में कोई बदलाव नहीं हुआ।

वे यथावत् मधुर भाव के साथ वहीं खड़े रहे, उनके चेहरे की दिव्य आभा को और तिरस्कार किए जाने पर भी उनकी पूर्ववत् प्रफुल्लित भावदशा को देखकर एक द्वारपाल उनके पास आया, उन्हें नमन-वंदन किया और उन्हें बड़े आदर-सत्कार के साथ राजमहल के अंदर ले गया।

वहाँ एक मंत्री ने उन्हें एक ऐसे स्थान पर ठहराया, जहाँ सुख-भोग की अनेकों वस्तुएँ उपलब्ध थीं। उनकी सेवा में रूप-लावण्य और सौंदर्य से भरी सुंदर स्त्रियों को लगा दिया गया, परंतु उन्हें देखकर श्री शुकदेव जी की भावदशा पूर्ववत् ही बनी रही। वे जरा भी विचलित नहीं हुए। उन्हें देखकर भी वे ऐसे देख रहे थे, वे ऐसे लग रहे थे, मानो उन्होंने कुछ देखा ही न हो।

स्वभाव से ही विरक्त, अनासक्त, सुख-दुःख और मान-अपमान में भी एक-से रहने वाले शुकदेव जी को राजमहल के सुख, ऐश्वर्य, भोग, वैभव को देखकर भी कोई हर्ष नहीं हुआ। ब्रह्मचिंतन में ही संलग्न रहकर उन्होंने वहाँ एक दिन और एक रात्रि बिता दी। दूसरे दिन प्रातःकाल ही राजा जनक उनके पास गए और उनकी विधिवत् पूजा-अर्चना की। कुशल-मंगल के पश्चात् शुकदेव जी ने जनक जी को अपने आने का प्रयोजन बतलाया और उन्होंने जनक जी से ब्रह्मज्ञान, मोक्ष आदि के संबंध में कई प्रश्न किए।

जनक जी उनके विरक्त भाव व जिज्ञासा को जानकर आनंदित थे और शुकदेव जी की प्रशंसा करते हुए उन्होंने उपदेशस्वरूप कहा—“बिना गुरु के ज्ञान नहीं होता और बिना ज्ञान के मोक्ष नहीं होता। संसाररूपी भवसागर को पार करने के लिए गुरु ही एकमात्र सहारा हैं। गुरु से ज्ञान पाकर ही शिष्य की अंतःदृष्टि, आत्मचक्षु, आत्मदृष्टि खुलती है और उस दृष्टि से देखते ही उसे स्वरूपबोध हो जाता है, फिर तो सभी मार्ग स्वयं ही समाप्त हो जाते हैं। लोक-मर्यादा और कर्म-मर्यादा का उच्छेद न हो, इसी के लिए वर्णाश्रम धर्म का सेवन आवश्यक कहा गया है, फिर इनके आश्रय से आगे बढ़ते चलें, अनासक्त भाव से कर्तव्यपालन करते चलें तो अंत में स्वतः ही शिष्य को, साधक को पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ से परे की गति, स्थिति प्राप्त हो जाती है।

“अंतःकरण की शुद्धि के लिए वर्णाश्रम धर्म की निस्संदेह बड़ी आवश्यकता है, पर सत्य यह भी है कि जिसे ब्रह्मचर्य आश्रम में ही आत्मतत्त्व, परमतत्त्व, स्वरूपबोध की उपलब्धि हो जाए, उसके लिए अन्य आश्रमों का कोई प्रयोजन रह ही नहीं जाता। अभ्यास के द्वारा शिष्य को, साधक को पहले तामसिकता और राजसिकता का त्याग करना चाहिए और सात्त्विकता का आश्रय लेना चाहिए। फिर सात्त्विकता से भी अनासक्त होकर उससे परे हो जाना चाहिए।

“यही साधना का सच्चा स्वरूप है। जो पुरुष, शिष्य, साधक, सभी प्राणियों में अपनी ही आत्मा को देखते हैं और अपनी आत्मा में सभी प्राणियों को देखते हैं, वे पाप-पुण्य से परे हो जाते हैं, निर्लिप्त हो जाते हैं। वे शुभ-अशुभ, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, मान-अपमान, राग-द्वेष सबसे परे हो जाते हैं और मुक्त हो जाते हैं। वे मोक्ष, मुक्ति और

परमतत्त्व की प्राप्ति के अधिकारी हो जाते हैं। वे अभय और निर्भय हो जाते हैं। जिसे किसी का भय नहीं, जिससे किसी को भय नहीं, जिसे न राग है, न द्वेष है, वही ब्रह्मज्ञानसंपन्न है। जब जीव मन, वाणी और कर्म से किसी का अनिष्ट नहीं करता और काम, क्रोध, मोह, लोभ, राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि विकारों से मुक्त हो जाता है, सुख-दुःख, हानि-लाभ, जीवन-मरण, शीत-उष्ण, निंदा-स्तुति आदि द्वंद्वों में भी समान दृष्टि, समान भाव में रहता है, तब वह आत्मज्ञानसंपन्न हो जाता है।”

अंत में राजा जनक बोले—“वत्स! शुकदेव, ये सभी बातें तथा समस्त सद्गुण तुममें प्रत्यक्ष

दीख रहे हैं। मैं जानता हूँ कि तुम ज्ञान, वैराग्य में स्थित हो। तुम समस्त विषयों के, द्वंद्वों के परे पहुँच चुके हो। तुम्हें ज्ञान प्राप्त है, विज्ञान प्राप्त है, तुम्हारी बुद्धि स्थिर है, तुम स्वयं ब्रह्म हो और मैं क्या कहूँ?”

इस प्रकार राजा जनक के उपदेश पाकर शुकदेव जी को बड़ा ही आह्लाद और आनंद हुआ और राजा जनक को सादर, श्रद्धापूर्वक नमन करते हुए, उनसे विदा लेकर वे हिमालय पर अपने पिता व्यास जी के आश्रम पर लौट आए। अपने पुत्र को देखकर महर्षि वेदव्यास जी को भी बड़ा आनंद हुआ। □

कन्नौज के आचारच्युत और जातिच्युत ब्राह्मण अजामिल ने कुलटा दासी को पत्नी बना लिया था। किसी भी विधि से धन कमाना और उस दासी को संतुष्ट करना ही उसका काम हो गया था। माता-पिता और अपनी साध्वी पत्नी के प्रति कर्तव्यों को वह पूर्णतया विस्मृत कर चुका था। वह पतितों की भाँति जीवन जी रहा था।

अजामिल की कुलटा दासी से कई संतानें हुईं। किसी पुण्यवश उसने अपने सबसे छोटे पुत्र का नाम नारायण रखा। अजामिल का उस पर अपार मोह था। इसी मोहग्रस्त दशा में अजामिल का अंतिम समय आ गया और यमदूत उसे लेने पहुँचे।

मोहवश वह अपने प्रिय पुत्र को पुकारने लगा—नारायण! नारायण! अनजाने में लिए गए इस नाम से प्रसन्न होकर भगवान के पार्षद तुरंत दौड़ पड़े और उन्होंने यमदूतों को वहाँ से भगा दिया। उनके जाने पर अजामिल की चेतना सजग हुई।

इस घटना से उसका हृदय परिवर्तित हो गया। उसकी मोहासक्ति का सर्वथा नाश हो गया। अपने पापकर्मों के लिए उसके मन में घोर प्रायश्चित्त की भावना जाग्रत हो गई। वह घर छोड़कर गंगा किनारे भगवन्नाम जप में लग गया। अंतिम समय आने पर समस्त पापों से मुक्त होकर भगवद्भाम को प्राप्त हुआ।

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◀

जीतता है इंद्रिय संयम



बृहदारण्यक में एक आख्यान आता है—
देवताओं ने वाणी से कहा आप हमारे उत्कर्ष का
माध्यम बनिए। सत्यव्रती वाणी ने वरदान दिया
और देवता शक्तिशाली हो गए। असुरों ने सोचा इस
तरह तो देवता हमें जीत लेंगे।

उन्होंने देववाणी को पाप-बिद्ध कर दिया।
वह उचित-अनुचित कुछ भी बोलने लगी, फलतः
देवताओं का वह अस्त्र निष्फल हो गया। तब
देवताओं ने घ्राण इंद्रिय से कहा—तुम हमारी सहायता
करो। श्रेष्ठग्राही घ्राण ने देवों की सहायता की और
वे बढ़ चले। तब असुरों ने गिराने के लिए घ्राण को
पाप-बिद्ध कर दिया और वह शुभ-अशुभ किसी
भी गंध को ग्रहण करने लगी, फलतः वह अस्त्र भी
निष्फल हो गया और देव गिरने लगे।

तब देवता चक्षु के पास गए और उनसे
सफलता की प्रार्थना की। श्रेय दर्शन का व्रत धारण
किए हुए चक्षु देवताओं को समुन्नत करने लगे।
तब कुटिल असुरों ने उन्हें भी पाप-बिद्ध कर दिया
और वे उचित-अनुचित कुछ भी देखने लगे, फलतः
उनकी शक्ति भी नष्ट हो गई और देव हतप्रभ हो गए।

इसी प्रकार कानों को असुरों ने पाप-बिद्ध
किया और वे भी असहाय हो गए। उसी प्रकार मन
ने देवताओं की सहायता की, पर पाप-बिद्ध होने
पर वह भी असहाय हो गया। अंततः दुखी देवताओं
ने प्राण का आश्रय लिया, पर असुर उसे पाप-बिद्ध
न कर सके, अस्तु देव विजयी हुए और असुर हार
गए। उपनिषद्कार ने प्रतिपादन किया है कि जो
इस प्राण की रक्षा करता है वह कभी नहीं हारता
और मृत्युंजय बन जाता है।

कथानक में इसका उद्घाटन किया गया है
कि इंद्रियाँ देवशक्तियों से ओत-प्रोत हैं। यदि
उन्हें पापकर्मों में निरत न होने दिया जाए, तो ये
केवल कल्याण को ही ग्रहण करें और श्रेय पथ
पर ही चलें तो उनमें सन्निहित शक्ति भंडार के
सदुपयोग से मनुष्य जीवन संग्राम के हर मोर्चे पर
विजयी हो सकता है, पर यदि इंद्रियाँ असंयमी,
उच्छृंखल और कुमार्गगामी हो जाएँ तो फिर देव
जैसे वैभववानों को भी पराजय का मुँह देखना
पड़ेगा।

जिसका प्राण प्रबल है, संकल्प अडिग है,
वही पाप-बिद्ध किए जाने के असुर षड्यंत्र को
विफल कर सकता है और पराभव की हर आशंका
को निरस्त करते हुए अजर-अमर मृत्युंजय बन
सकता है। लगता है गुरुदेव ने इस कथानक का मर्म
अपने जीवन क्रम में उतार लिया।

इंद्रियों से परिचारिका जैसा काम लेते रहे,
दूसरों की तरह उच्छृंखल न होने देने के लिए सदा
सजग रहे। अभक्ष्य उन्होंने खाया नहीं, अनीति का
अन्न कभी गले से नीचे नहीं उतरने दिया। साधना
काल में 5 मुट्ठी जौ का आटा और 5 पाव छाछ
दैनिक आहार पर निर्वाह करते रहे, इसके पश्चात
भी न उन्होंने स्वाद को आगे आने दिया न अनीति
उपार्जित अभक्ष्य के लिए मुँह खोला।

क्षुधा बुझाने के लिए औषधिरूपी अन्न के
अतिरिक्त स्वाद के संबंध में कभी सोचा तक नहीं।
वाणी से असत्य बोलने और छल करने की
आवश्यकता ही कभी नहीं पड़ी। न किसी को
कुमार्ग पर चलाया, न किसी का जी दुखाया।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

ऐसी निष्पाप और निर्मल जिह्वा पर सरस्वती ही विराजमान रह सकती थी, सो रही थी, उनके आशीर्वाद निष्फल नहीं गए न कभी परामर्श टाले गए। इस वाक् पवित्रता ने उनका अन्नमय कोश जाग्रत करने में भारी सहायता की। तद्विषयक उपासना का कर्मकांड तो निमित्त मात्र था।

वे सदा सर्वत्र सद्भावना और श्रेष्ठता की गंध सूँघते रहे। किसी की दुर्भाव-दुर्गंध उन्होंने कभी ग्रहण की ही नहीं। निंदकों का कभी बुरा न

माना, वरन उन्हें साबुन का प्रयोजन पूरा करने वाला हितैषी मानकर दुलारा। दुर्जनों में भी सज्जनता ढूँढ़ी और हर भले-बुरे में ईश्वर का अंश विद्यमान देखते हुए उसे स्वच्छ और सुंदर बनाने के लिए सामर्थ्य भर प्रयत्न करते रहे। प्राण देवता को उन्होंने पाप-बिद्ध नहीं होने दिया, फलतः वह उन्हें साधना समर में विजयी ही बनाता रहा और उसने मनोमय कोश की जागरण-प्रक्रिया को सरल बनाने में भारी सहायता पहुँचाई। □

आजीवन सदस्य कृपया ध्यान दें

यह सूचना गत 8 मास से निरंतर जा रही है, इसका उत्तर नहीं मिल रहा है। समझा जा सकता है कि या तो पाठकों की इसमें रुचि नहीं है अथवा अन्य कोई कारण है। अतः आगामी मास से पुराने आजीवन सदस्यों की अखण्ड ज्योति भेजना बंद किया जा रहा है।

आपने जब आजीवन सदस्यता स्वीकार की थी, तब से अब तक महँगाई इतनी अधिक बढ़ चुकी है कि पत्रिका की आजीवन सदस्यता का निर्वहन कर पाना कठिन हो रहा है। अब पूर्व की सुरक्षानिधि में आजीवन सदस्यता बनाए रखना संभव नहीं जान पड़ता। जो सदस्य रुपये 150 (सन् 1982) में बने थे, उन्हें अभी तक पत्रिका भेजी जा रही है; जबकि वार्षिक चंदा रुपये 15 (सन् 1982) से बढ़कर रुपये 300 हो गया है—भविष्य में और बढ़ता रहेगा। ऐसी स्थिति में आजीवन सदस्यता को पुरानी शर्तों पर जारी नहीं रखा जा सकेगा।

अब नई व्यवस्था के अनुसार आजीवन सदस्यता 20 वर्ष तक सीमित रहेगी। उसका अब चंदा रुपये 6000/- होगा। हम सबकी यही अपेक्षा है कि जो श्रद्धा-स्नेह का संबंध लंबे समय से बना हुआ है, वह और भी प्रगाढ़ होगा। अखण्ड ज्योति का आलोक आपको एवं अन्य परिजनों को आलोकित करता रहेगा।

इसके लिए हम आपके समक्ष निम्न विकल्प प्रस्तुत कर रहे हैं—

(1) आपका आजीवन शुल्क जो भी जमा है, उसे काटकर शेष रुपया और भेज दें, ताकि आपकी आजीवन सदस्यता (20 वर्षीय) बनी रहे। राशि बैंक ड्राफ्ट/चैक/RTGS/NEFT से भेजी जा सकती है। राशि भेजने के लिए बैंकों का विवरण पत्रिका में पृष्ठ सं. 08 पर दिया गया है।

(2) आपकी आजीवन सदस्यता समाप्त कर दी जाए एवं जमा सुरक्षानिधि वार्षिक चंदा में ट्रांसफर कर दी जाए। उस राशि से वार्षिक चंदा रुपये 300/- के हिसाब से जब तक का चंदा बने अखण्ड ज्योति भेज दी जाए।

(3) यदि किन्हीं कारणोंवश ऐसा संभव न हो पा रहा हो तो अपने बैंक खाते की जानकारी भेजने का अनुग्रह करें, जिससे आपको राशि वापस भेजी जा सके। विवरण मिलने पर आपके खाते में सीधे रुपया भेज दिया जाएगा।

पत्र व्यवहार में अपनी सदस्य संख्या, नाम, पता, फोन नंबर, ई-मेल का उल्लेख अवश्य करें।

आप सबको पत्र द्वारा सूचित किया जा चुका है, संभव है किसी कारणवश पत्र न मिला हो। अपनी सहमति का पत्र डाक/ई-मेल द्वारा भेजने का अनुग्रह करें।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

कैसे गढ़ें विद्यार्थी का जीवन



विद्यार्थी जीवन के पल किसी के भी जीवन के अविस्मरणीय पल होते हैं। यदि इस समय को सही ढंग से निभाया गया तो यह व्यक्ति के उज्ज्वल भविष्य को सुनिश्चित करता है, जिससे मानव जीवन धन्य हो जाता है और व्यापक स्तर पर भी इसकी सुखद परिणतियाँ परिलक्षित होती हैं और यदि जीवन के इस स्वर्णिम काल के महत्त्व को न समझते हुए इसके प्रति लापरवाही बरती गई तो यह जीवन को नरकतुल्य भी बना सकता है, जिसका खामियाजा व्यक्ति को जीवन भर भुगतना पड़ता है।

एक बार जीवन का यह स्वर्णिम काल बीत जाने पर फिर वापस नहीं आता। यदि इसका श्रेष्ठतम उपयोग नहीं किया गया तो जीवन भर इसका पछतावा कहीं गहरे सालता रहता है—जो इनसान के वैयक्तिक ही नहीं, वरन पारिवारिक जीवन को भी प्रभावित करता है। फिर समाज भी इससे कैसे बच सकता है? सामूहिक स्तर पर एक हैरान-परेषान, अशांत-असुरक्षित और आत्मविश्वास से हीन पीढ़ी इसका दुष्परिणाम सहती है, जिसका सामूहिक फल पूरा समाज, राष्ट्र एवं मानवता भुगतने के लिए विवश-बाध्य होती है।

परिवार की सुख-शांति व नई पीढ़ी में संस्कार देने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि विद्यार्थियों को शिक्षा के साथ संस्कार दिए जाएँ, कौशल युक्त प्रशिक्षण दिया जाए, जिससे वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें। अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करते हुए परिवार व समाज निर्माण में अपना योगदान दे सकें।

साथ ही उनमें जीवन की आधारभूत समझ विकसित की जाए, जिससे वे मानव जीवन के महत्त्व को समझते हुए, इसमें निहित संभावनाओं को साकार करते हुए, इस जीवन को धन्य कर सकें तथा समाज एवं राष्ट्रनिर्माण में अपनी सार्थक भूमिका निभा सकें।

ऐसे कौशल के अभाव में आज शिक्षाकेंद्र संस्कारविहीन उच्छृंखल पीढ़ी के निर्माण के गढ़ बने हुए हैं, जहाँ दिशाहीन पीढ़ियाँ बाहर निकल रही हैं, जिन्हें न अपने जीवन की समझ है और न अपनी सांस्कृतिक जड़ों की। जब व्यक्ति स्वयं ही दिग्भ्रमित हो तो वह समाज, राष्ट्र एवं मानवता को क्या दिशा दे सकता है?

अतः ऐसी समग्र शिक्षा समय की आवश्यकता है, जो उसे स्वावलंबी बनाने के साथ जीवन जीने की कला भी सिखाए। जिसके बल पर वह जीवन के विषम-विकट पलों के बीच भी अपना संतुलन खोए बिना एक सार्थक जीवन जी सके और दूसरों को भी सही राह दिखा सके।

इसके लिए अभिभावकों के साथ शिक्षण संस्थानों व शिक्षकों का यह कर्तव्य बनता है कि वे विद्यार्थियों को उनके जीवन की आधारभूत समझ देने में सहायता करें। कैरियर निर्माण के साथ उनमें जीवनलक्ष्य की भी समझ को विकसित करें, जिससे अपने व परिवार के कल्याण के साथ वे समाज, राष्ट्र एवं विश्व के भी उपयोगी घटक बनकर ईश्वर की इस सुंदर सृष्टि को और भी बेहतरीन बनाने में अपना योगदान दे सकें। इसके लिए छात्र-छात्राओं को उनकी रुचि, क्षमता एवं योग्यता के

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

अनुरूप पाठ्यक्रम के चयन तथा कैरियर के निर्धारण में आवश्यक मार्गदर्शन की व्यवस्था करना अभीष्ट है।

विद्यार्थियों की कक्षा को रुचिकर बनाया जाए, रटने के बजाय विषय की समझ उनमें पैदा की जाए। बने बनाए पूरे नोट्स देने के बजाय उन्हें आधारभूत सहायक सामग्री दी जाए, ताकि वे स्वयं पुस्तकालय व अन्य स्रोतों से अध्ययन कर स्वतंत्र चिंतन व सोच को विकसित कर सकें।

विद्यार्थियों को नियमित रूप से घर जाकर नोट्स बनाने व अगले दिन प्रातः पुनस्मरण के लिए प्रोत्साहित किया जाए। घर में माता-पिता एवं अविभावकों का भी कर्तव्य बनता है कि वे इसमें आवश्यक सहयोग करें।

अगली कक्षा प्रारंभ करने से पहले शिक्षक पिछली कक्षा की समझ को पुख्ता कर ही आगे बढ़ें। इसके लिए कुछ प्रश्न पूछे जा सकते हैं या छात्रों के प्रश्नों व जिज्ञासाओं के समाधान करते हुए विषय को प्रकाशित किया जा सकता है। ज्ञान के अभीप्सु विद्यार्थी का भी कर्तव्य बनता है कि रोज कक्षा में पढ़ाए जा रहे विषय को पहले से पढ़कर आए, जिससे कक्षा अधिक रुचिकर बने व सार्थक सटीक प्रश्न संभव हों और उत्कृष्ट शिक्षण का वातावरण बने।

विद्यार्थियों को नित्य पुस्तकालय में कुछ समय बिताने तथा नोट्स को समृद्ध करने की कला सिखाई जाए। यदि परिस्थितियों के दबाववश रोज कुछ छूट रहा हो, तो सप्ताहांत व छुट्टियों में उसे पूरा किया सकता है। छात्र-छात्राओं में ज्ञान के प्रति ऐसी पिपासा पैदा की जाए कि वे छुट्टियों को मौजमस्ती का समय न समझकर, इन्हें विद्यार्जन व कौशल विकास का स्वर्णिम अवसर मानें। विद्यार्थियों को समय प्रबंधन की कला को समझाने

की भी आवश्यकता है, जिससे वे हर पल का श्रेष्ठतम उपयोग करते हुए अधिकतम ज्ञान अर्जित कर सकें।

बच्चों को जहाँ अपनी पढ़ाई के प्रति एकनिष्ठ, लक्ष्य केंद्रित एवं एकाग्र होने की कला सिखाई जाए, वहीं व्यक्तित्व के सभी पक्षों को विकसित करने वाले वातावरण का सृजन भी महत्वपूर्ण है। पढ़ाई के साथ खेल-कूद को भी आवश्यक समय दिया जाए।

पाठ्यक्रम की पढ़ाई के इतर समग्र बौद्धिक विकास के लिए अन्य बौद्धिक गतिविधियों की व्यवस्था की जा सकती है। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी रुचि के अनुरूप वे भाग ले सकते हैं, लेकिन यह सब पढ़ाई की कीमत पर न हो, ये भी शिक्षकों-अभिभावकों को सुनिश्चित करना चाहिए; क्योंकि विद्यार्थी का पहला कर्तव्य विद्या का अर्जन है, व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास है।

अध्ययन में रुचि के साथ विद्यार्थियों को स्वाध्याय की भी आदत डाली जाए। देश एवं विश्व के श्रेष्ठतम विचारों के साथ विद्यार्थियों का परिचय कराया जाए। सप्ताह अंत में सत्संग की व्यवस्था की जा सकती है। इसके लिए पुस्तकालय में उत्कृष्ट, प्रेरक पुस्तकों का संकलन संग्रह अभीष्ट है। विद्या के मंदिर पुस्तकालय पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। यदि अभिभावक एवं शिक्षक स्वयं भी स्वाध्यायप्रेमी होंगे, तो यह कार्य और सरल तथा प्रभावी हो जाता है।

बच्चों को सम-सामयिक विषयों से भी रूबरू होने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। समाचारपत्र-पत्रिकाओं से लेकर इंटरनेट स्रोतों तक इनकी पहुँच सुलभ की जा सकती है, ताकि अपने विषयों की नवीनतम जानकारियों के साथ वे अद्यतन रह सकें व किसी भी प्रतियोगी परीक्षा

में समय आने पर अपना श्रेष्ठतम प्रदर्शन कर सकें। समाज, देश एवं विश्व के घटनाक्रम से परिचित युवा पीढ़ी ही इनके सार्थक समाधान पर विचार कर सकती है और इनके सटीक समाधान की दिशा तय कर सकती है।

जीवन में उत्कृष्टता एवं आदर्श के प्रति अनुराग पैदा करना एक महत्वपूर्ण कार्य है। यदि ऐसा संभव हो सके तो विद्यार्थी जीवन में ऐसी सुदृढ़ नींव रखी जा सकती है, जो चरित्रवान एवं निस्स्वार्थ नागरिक एवं समाजसेवी सृजन सैनिकों की आवश्यकता को पूरा कर सके।

इसके लिए महापुरुषों की जयंतियों पर विशेष आयोजन कर इनकी प्रेरणा को हृदयंगम करने की व्यवस्था की जा सकती है। व्यक्तिगत एवं सामूहिक जीवन में ध्यान एवं उपासना की व्यवस्था के साथ आत्मविकास एवं श्रेष्ठ संस्कारों का बीजारोपण किया जा सकता है।

नई पीढ़ी को राग-रंग, फैशनबाजी व दुर्व्यसनों से जितना दूर रखा जाए, उतना बेहतर है। शिक्षण संस्थानों में वातावरण जितना सात्विक, पावन और सुरुचिपूर्ण रखा जाए, उतना बेहतर रहेगा। उनके लिए स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्था की जा सकती है।

एक अनुशासित एवं संयमित जीवनशैली के लिए बच्चों को प्रेरित किया जा सकता है। नियमित अंतराल पर श्रमदान के माध्यम से श्रम की गरिमा का महत्व आत्मसात् कराना भी महत्वपूर्ण है। दूसरों के साथ वाणी-व्यवहार के श्रेष्ठ मानदंडों का प्रशिक्षण भी अभीष्ट है। जरूरतमंदों की सहायता व सेवा का भाव जगाया जाना आवश्यक है। शिक्षक-अविभावक अपने उदाहरण से सादा जीवन उच्च विचार एवं स्वच्छता-सुव्यवस्था जैसे सद्गुणों का अभ्यास करा सकते हैं।

रात को नित्य सोने से पहले दिन भर की समीक्षा का अभ्यास भी आवश्यक है, जिसका लेखा-जोखा एक डायरी में किया जा सकता है। इसके साथ नित्य आत्मनिरीक्षण, आत्मसमीक्षा के साथ आत्मसुधार, आत्मनिर्माण की प्रक्रिया गति पकड़ेगी। इससे स्वतः ही विद्यार्थी मोबाइल की मायावी चुनौती का सामना करने में सक्षम होंगे।

इसका श्रेष्ठतम उपयोग कर वे अपनी पढ़ाई में श्रेष्ठतम प्रदर्शन करते हुए दूसरे विद्यार्थियों के लिए प्रेरक मिसाल के रूप में प्रस्तुत होंगे और अपने उत्कृष्ट व्यक्तित्व के साथ समाज के भावी कर्णधार के रूप में अपनी प्रकाशपूर्ण भूमिका के लिए तैयार होंगे।

महाभारत युद्ध समाप्त हुआ। धर्मराज युधिष्ठिर ने राज्य ग्रहण किया और शासन करना प्रारंभ किया। तभी अश्वत्थामा ने पांडव कुल के नाश हेतु ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, परंतु भगवान श्रीकृष्ण ने सही समय पर उपस्थित होकर उत्तरा के गर्भस्थ शिशु की रक्षा की। इसके बाद जब श्रीकृष्ण द्वारका लौटने लगे तो कुंती ने उनसे प्रार्थना की—“हे प्रभु! आप आशीर्वाद दें कि हम पर विपत्तियाँ सदैव आती रहें।” श्रीकृष्ण ने हँसकर पूछा—“आप लोगों ने जीवन भर विपत्तियों का सामना ही किया है, फिर ऐसी विलक्षण माँग क्यों?” कुंती बोलीं—“भगवन्! विपत्तियाँ आएँगी तो उनसे रक्षा के लिए आप भी आएँगे। जिस भी कारण से आपका दर्शन हो, हमारे लिए तो सौभाग्यशाली ही होगा।” विपत्तियाँ हरेक के जीवन में आती हैं, पर जिनकी भगवान पर अटल श्रद्धा होती है, वे इन क्षणों को जीवन का सौभाग्य मानकर स्वीकार करते हैं।

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◀

जीवन-साधना के स्वर्णिम सूत्र



युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव द्वारा अपने अंतिम वर्षों में रचित क्रांतिधर्मी साहित्य में व्यक्ति निर्माण से जुड़ी प्रमुख पुस्तक है—जीवन-साधना के स्वर्णिम सूत्र। युगऋषि के दर्शन के निचोड़ के रूप में व्यावहारिक अध्यात्म का सार इसमें समाहित है। पूज्य गुरुदेव स्पष्ट लिखते हैं कि प्राचीनकाल में हरेक साधक को प्रारंभ में यम-नियम साधने पड़ते थे, परंतु आज की स्थिति में वैसा संभव नहीं दिखता।

अब तो व्यावहारिक पंचशीलों का परिपालन आदतों में सम्मिलित हो सके, तो भी काम चल जाएगा। श्रमशीलता, मितव्ययिता, शिष्टता, सुव्यवस्था और सहकारिता के पंचशील हमारे क्रियाकलाप में पूरी तरह से घुल-मिल सकें, तो समझना चाहिए कि प्राचीनकाल की तप-साधना के समतुल्य साधनात्मक साहस बन पड़ा।

व्यावहारिक धर्मधारणा के इन पंचसूत्रों के साथ पूज्य गुरुदेव ने उच्च मानसिकता के चार सूत्र दिए—ईमानदारी, समझदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी। इन 9 सूत्रों का जिस अनुपात में जीवन में समावेश होता गया, समझो व्यक्तित्व परिष्कार एवं चरित्र निर्माण का कार्य उसी अनुपात में घटित हो गया। इन सद्गुणों के अभाव में व्यक्ति का जीवन अधूरा ही रह जाता है और चरित्र भी अप्रमाणिक ही बना रहता है।

श्रमशीलता स्वस्थ, सफल एवं सार्थक जीवन का ठोस आधार है। एक श्रमशील व्यक्ति वह फिर किसान हो या विद्यार्थी, व्यवसायी हो या गृहिणी या अन्य कोई, दिन भर जी-तोड़ श्रम करता है, तो

रूखा-सूखा खाकर भी स्वस्थ रह सकता है और गहरी नींद का आनंद ले सकता है तो वहीं आरामतलब-विलासी लोग चिकनी चुपड़ी व तरह-तरह के स्वादु-व्यजन के बावजूद स्वस्थ नहीं दिख पाते, बल्कि नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त पाए जाते हैं।

ऐसे में एक तो व्यक्ति आलसी हो जाता है, दूसरा कामचोरी का तमगा लग जाता है। काम को छोटा-बड़ा मानने की कुचेष्टा जीवन के आनंद का हनन करती है। समझदार व्यक्तियों के लिए कोई भी कार्य छोटा या बड़ा नहीं होता, वे श्रम की गरिमा को जानते हैं तथा आवश्यकतानुरूप हर तरह के कार्यों को करते हुए अथक श्रम का जीवन जीते हैं और स्वस्थ रहते हैं।

निस्संदेह रूप में श्रमशील जीवन स्वस्थ जीवन के साथ चरित्र निर्माण का पहला आधार है। कामचोर, आलसी जैसी उपमाएँ व्यक्ति के चरित्र को अप्रमाणिक ठहराती हैं। बिना श्रमशील जीवन के अपनी ईमानदारी की कमाई का सवाल ही नहीं उठता। इस तरह आर्थिक आधार पर भी ऐसे व्यक्तियों का चरित्र संदिग्ध ठहरता है।

यही मितव्ययिता चरित्र निर्माण का दूसरा ठोस आधार है, जो श्रमशील जीवन के आधार पर ही संभव होती है। मेहनत से की गई कमाई की कीमत व्यक्ति जानता है।

विरासत में या लॉटरी में मिली संपत्ति की कीमत व्यक्ति नहीं समझ सकता और उसका व्यय भी फिर वैसे ही होता है। प्रायः दुर्व्यसनों, बिगड़ी आदतों व अन्य कुटेबों में ऐसी संपदा का दुरुपयोग

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

होते देखा जाता है। फैशनबाजी के भौंडे प्रदर्शन इसी से पनपते हैं।

वास्तविक धनी व्यक्ति 'सादा जीवन—उच्च विचार' का पालन करता है। अपनी आवश्यकता से अधिक संपदा को दूसरे जरूरतमंदों के सहयोग व परमार्थ के कार्यों में लगाता है। अपनी आमदनी से अधिक खर्च करने की वृत्ति भी साथ में रही तो फिर व्यक्ति का भ्रष्टाचारी होना लगभग तय हो जाता है।

किसी भी प्रकार धन कमाने का फितूर जिसके सर पर सवार हो जाए, तो वह हर हथकंडे अपनाता है, जिसमें औचित्य के हटते ही चारित्रिक पतन प्रारंभ हो जाता है; जबकि शास्त्रों में धर्म की मर्यादा में ही अर्थ के उपार्जन की हिदायत दी गई है, जिसके आधार पर व्यक्ति मोक्ष का अधिकारी बनता है। जबकि धर्मरहित अर्थ बंधन का ही कारण बनता है।

सुव्यवस्था, व्यक्तित्व निर्माण एवं चरित्र गठन से जुड़ा महत्वपूर्ण सूत्र है। इसके अभाव में व्यक्ति अस्त-व्यस्त जीवन जीते देखा जाता है। इसका मूल कारण रहता है व्यक्ति में कार्यों की प्राथमिकता की समझ का अभाव। ऐसे में अनिर्णय की स्थिति में समय नष्ट होता रहता है और जब परीक्षा की घड़ी आती है, तो व्यक्ति के हाथ-पैर फूल जाते हैं तथा तनाव हावी हो जाता है।

समय व जीवन की ऊर्जा तथा क्षमताओं का सुनियोजित न हो पाना ही मुख्य कारण है, जिससे व्यक्ति अपनी अंतर्निहित क्षमताओं को उजागर नहीं कर पाता, उसके व्यक्तित्व का समग्र विकास नहीं हो पाता और प्रतिभा होते हुए भी कुंद पड़ी रहती है। निस्संदेह रूप में समय की कद्र न कर पाना व्यक्ति को दुर्बल बनाता है, आत्मविश्वास के विकसित होने से रोकता है और एक सफल-

सार्थक जीवन से वंचित रखता है। अतः समय के हर पल के सदुपयोग की कला सीखना आवश्यक है। समय की साधना ही व्यक्तित्व एवं चरित्र में निखार लाती है।

व्यवहार में शिष्टता, शालीनता, विनम्रता जैसे गुण व्यक्तित्व की गरिमा को बढ़ाते हैं, चरित्र में चार चाँद लगाते हैं। उद्दंड, अहंकारी, दंभी व्यक्ति कितना भी योग्य, प्रतिभावान क्यों न हो, लोगों के दिलों में जगह नहीं बना पाता। भयवश वे उसका सम्मान करते प्रतीत हो सकते हैं, लेकिन हृदय से सम्मान नहीं करते।

शालीनता बिना मोल मिलती है, लेकिन इससे सब-कुछ खरीदा जा सकता है। नदी अपनी विनम्रता, निरहंकारिता के कारण ही सभी नालों व छोटे नदों के जल को स्वयं में समाहित करती हुई बड़ी नदी का रूप लेती है और रास्ते में सबकी प्यास बुझाती हुई, अपने अस्तित्व को सार्थक करती है और अंत में अपने चरम गंतव्य सागर में समा जाती है। शालीनता चरित्र में ऐसी चमक लाती है कि सभी उसको अपनाने के लिए आतुर रहते हैं। विरोधी तक ऐसे व्यक्तित्व के प्रभाव का लोहा मानते हैं।

इसी के साथ सहकारिता का गुण महत्वपूर्ण है। इसके अभाव में इक्कड़, स्वार्थी व्यक्ति अलग-थलग पड़ जाता है। दूसरों से कटा व्यक्ति कितना भी धार्मिक-आध्यात्मिक होने का भ्रम क्यों न पाले, लेकिन शून्यता से अध्यात्म प्रकट नहीं होता। परिवार समाज में सबके साथ समायोजन करते हुए, एकदूसरे के काम आते हुए ही व्यावहारिक अध्यात्म का उच्चस्तरीय सोपान पार होता है। आत्मविस्तार की प्रक्रिया यहीं रूपाकार लेती है। उपासना के पलों में उठे भाव, साधना के दौरान पक रहे विचार, आराधना के पलों में अनगिनत

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

परीक्षाओं को पार करते हुए व्यक्तित्व को कुंदन की तरह निखारते हैं और चरित्र को कालजयी आभा के साथ दीप्त करते हैं।

निस्संदेह रूप में ईमानदारी चरित्र का ठोस स्तंभ है, इसके अभाव में बेईमान व भ्रष्ट होने की उपाधि जीवन को मरणतुल्य बनाती है तथा समाज का विश्वास खो बैठती है। जिम्मेदारी का समावेश ही व्यक्ति को उपयोगी एवं स्वीकार्य बनाता है। इसके अभाव में एक गैरजिम्मेदार व लापरवाह व्यक्ति को कोई भी अपनाना नहीं चाहता। फिर समझदारी, दूरदर्शिता एक बड़ा गुण है।

इसके विपरीत एक मूढ़, मूर्ख एवं नासमझ को कोई भी बड़ी जिम्मेदारी नहीं सौंपी जा सकती। फिर बहादुरी का कोई विकल्प नहीं। एक कायर,

डरपोक से कुछ बड़े की आशा नहीं कर सकते; जिसमें सत्य के साथ खड़े होने का साहस न हो, बुराईयों से लोहा लेने का माददा न हो, उसका दुलमुल रवैया चरित्र को संदिग्ध ही बनाता है और ऐसा जीवन निराशा, हताशा के अँधेरे में जीने के लिए अभिशप्त होता है।

इस तरह युगऋषि द्वारा बताए गए जीवन-साधना के ये 9 सूत्र व्यक्ति को पूर्णता की ओर अग्रसर करने वाले स्वर्णिम सूत्र हैं, व्यावहारिक अध्यात्म का निचोड़ हैं, जिनको अपनाकर व्यक्ति समाज में श्रद्धा-सम्मान का अधिकारी बनता है, सांसारिक स्तर पर एक सार्थक जीवन जीता है और अध्यात्म की उच्चतर कक्षा के लिए पात्रता सिद्ध करता हुआ गुरुकृपा का अधिकारी बनता है। □

एक बार देवराज इंद्र को अपने इंद्र पद पर आसीन होने का अभिमान हो गया, सो भगवान विष्णु ने उनके दर्प का शमन करने के लिए देवर्षि नारद को भेजा। देवर्षि नारद देवराज को साथ लेकर भ्रमण को निकले। दोनों आकाशमार्ग से जा रहे थे कि देवर्षि नारद धरती पर रेंगते चींटियों के एक समूह को देखकर हँसने लगे। उनको इस तरह हँसते देखकर इंद्र को उत्सुकता हुई। उन्होंने देवर्षि से उनके हँसने का कारण पूछा।

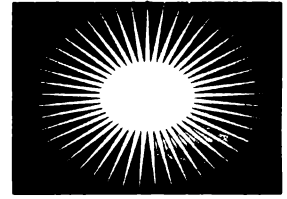
देवर्षि नारद बोले—“देवराज! ये सब चींटियाँ किसी-न-किसी जन्म में इंद्र पद पर आसीन रही हैं और आज उनको इस तरह एक मनुष्येतर योनि में भटकते देखकर मुझको प्रकृति की लीला पर हँसी आ गई।” इंद्र आश्चर्य से बोले—“ऐसा कैसे संभव है देवर्षि?”

नारद बोले—“मात्र यही संभव है देवराज। इस सृष्टि में आत्माएँ कर्मानुसार गति करती हैं और उसी के अनुसार बड़े पदों को अथवा निकृष्ट योनियों को प्राप्त करती हैं। यही प्रकृति की लीला है, इसे आप कर्म का कालचक्र भी कह सकते हैं। इसी में गति करते-करते कभी कोई इंद्र बनता है तो कभी कोई चींटी। मात्र अहंकारमुक्त होकर कर्म करने से ही इस चक्र से मुक्ति संभव है।”

इंद्र का अहंकार यह सुनकर विगलित हो गया।

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◀

अमरता की यात्रा



अमरता के पुजारी उपनिषद् के ऋषि कह गए कि हमारा मूल ध्येय उस परमात्मा की दिव्य प्रकाश किरण को उत्सर्जित कर, उसकी दिव्यता के प्राकट्य में सहायक बनना है। जब दिव्यता की बात आती है तो एक ही हल सूझता है, वह है इस भौतिक शरीर में प्रतिष्ठित महान आत्मसत्ता को उजागर करना, उसकी प्रतिकृति संसार में उसे प्रतिष्ठित करना यानी सर्वत्र सौंदर्य, अपनत्व एवं दिव्यता की धारा को बहाना, सब में उसे देखना और सबके कल्याण की दिशा में उसे अग्रसर करना।

ऐसा कैसे होगा, दिव्यता का सृजन तो हो सकता है, परंतु उसे क्रिया-रूप में परिणत कर, उससे जीवन को उत्कृष्ट संकल्प के अनुसार गतिशील करना भी मानव की प्रकृति के बस में है। यही उसे सीखना चाहिए तथा जीवन की दिव्यता की प्राप्ति की दिशा में बढ़ चलना चाहिए। अपनी प्रज्ञा का विस्तार ही मनुष्य की सेवा-आकांक्षा का महत्वपूर्ण प्रश्न है। इसे समझ मनुष्य अपने वास्तविक विस्तार क्रम की ओर बढ़ चलता है।

यही मृत्यु से अमरत्व की दिशा-यात्रा का प्रथम बिंदु है तथा इसे अपनाकर मनुष्य अपने जीवन की स्वर्णिम गति को प्राप्त होता है। अमरता के दिव्याधिकार को मनुष्य समझे इसके लिए चाहिए एक व्यापक क्रिया-प्रणाली, जिसमें मनुष्य यह पहचान सके कि उसे कितनी वृहद अनुसंधान वृत्ति का सुयोग मिला है।

जीवन का अनुसंधान एक अनवरत यात्रा बने, इसके लिए उचित विषय-सामग्री एवं दूरगामी चिंतन का भाव विनिर्मित हो सके, ऐसे प्रयास चलने

चाहिए। यह तभी होगा, जब मनुष्य जीवन के हर पक्ष को प्रशस्त करता एक मार्ग हर मनुष्य की क्रियाविधि के अंतर्गत हो, तथा उसके क्रियान्वयन में मनुष्य पूर्ण तत्परता से लग पड़े।

अमरता की यात्रा एक व्यापक अनुसंधान विधि भी है और वह मनुष्य के परिष्कार के मार्ग के फलस्वरूप उपजी पारमार्थिक अभिरुचि भी है। इसे इस रूप में समझा जा सकता है कि जब मनुष्य अपने कर्तव्य का निर्धारण अपने आत्मिक ध्येय के अनुसार करेगा तथा उसे निरंतर उत्कृष्टता के मार्ग पर आगे बढ़ने में सहायता मिलेगी, तब वह स्वतः ही परिष्कार के मार्ग के साथ पूर्णता को भी अभिलक्षित कर, सेवापरायण जीवन जिएगा। तब उसकी लक्ष्य-सिद्धि में कोई बाधा नहीं रह जाएगी। यही दिव्यता, उससे उपजने वाली महान संभावना एवं चमत्कृत कर देने वाले मानव जीवन के स्वरूप का सच्चा परिदृश्य है।

इसके साथ जुड़ता है मनुष्य के अहंकार का पतन और उसकी दैवी संभावना का पूर्ण जागरण, जो महान प्रयासों से ही संभव है। इस कार्य में जुड़ने के लिए मनुष्य को चाहिए सत्य के प्रति पुकार तथा अपनी आत्मा के पुनर्बोध की प्रक्रिया की प्रतिष्ठा।

जिस क्षण हमें अपनी अमरता का पुनः बोध हो जाता है, हम क्षुद्र स्वार्थों के पीछे भटकने के बजाय तेजस्वी कार्यक्रम अपनाते हैं, तथा हमारा अंतरंग, परिष्कार की दिव्य भावना के अनुरूप अपने पथ का निर्धारण करता है, तो स्वतः ही विचारों की महानता हमारे कलेवर के प्रत्येक अंग-उपांग में समाहित हो, एक नया स्वरूप प्रस्तुत करती है।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

इसे ही अमरता के पुनर्बोध से विचारों का निर्माण कहेंगे। मनुष्य का इस उद्देश्य हेतु दत्तचित्त लगे रहना चाहिए। यहीं पर आकर मनुष्य की यात्रा समाप्त होती है तथा यहीं से उसे आगे बढ़ने का शुभ अवसर भी प्राप्त होता है; क्योंकि अमरता एक स्थिति विशेष नहीं, जीवन का सिद्धांत है।

इसे विचारदर्शियों ने पहचाना है तथा उसे नीतिगत रूप से उजागर कर, उज्ज्वल निर्माण की दिशा में वे बढ़े हैं। यही कारण है कि आज मानव सभ्यता कहीं-न-कहीं धर्म की आधारशिला पर खड़ी है तथा उसे गुणोत्सर्ग का एक प्रबल माध्यम

प्राप्त हुआ है, जिसका प्रकाश युगों-युगों तक मानवता के हृदयपटल पर बना रहेगा, जिसकी छाप से अनेकों मानव पूर्ण स्वतंत्रता एवं विचारोत्कर्ष के मार्ग पर चले हैं एवं चलते रहेंगे।

ऐसी महत्त्वपूर्ण कृति को भला हम कैसे भुला लें, इसके प्रकाश से मानव सभ्यता को वंचित नहीं होना चाहिए तथा भाग्योदय की दिशा में बढ़-चलना चाहिए। तभी सच्ची विश्व-शांति एवं सेवा-परिष्कार का मार्ग दृष्टिगोचर हो सकेगा तथा मनुष्य अपने इस जीवन को धन्य बना, प्रकाश एवं सौंदर्य की दिशा में बढ़ चलेगा। □

भगवान बुद्ध प्रव्रज्या पर निकले हुए थे। एक स्थान पर वे विश्राम करने के लिए रुके तो अपने साथ आ रहे भिक्षुओं को देखकर चिंता में पड़ गए। उनका अंतिम पड़ाव एक राजप्रासाद में था, जहाँ के राजा ने सभी भिक्षुओं को बहुत से वस्त्र उपहार में दिए थे, जिन्हें सारे भिक्षु सिर पर गठरी के समान उठाए चल रहे थे। भिक्षुओं की इस संचय वृत्ति को देखकर भगवान बुद्ध को अत्यंत चिंता हुई।

भगवान बुद्ध ने सभी भिक्षुओं से पूछा—“भंते! एक मनुष्य को ग्रीष्मकाल में कितने चीवर (ओढ़ने वाला वस्त्र) की आवश्यकता है?” भिक्षुओं ने उत्तर दिया—“प्रभु! ग्रीष्मकाल में एक चीवर पर्याप्त है।” भगवान बुद्ध ने यही प्रश्न वर्षाकाल के संदर्भ में पूछा तो उन्हें उत्तर मिला कि उस समय दो चीवर मनुष्य की आवश्यकतापूर्ति के लिए बहुत हैं।

फिर भगवान बुद्ध ने प्रश्न किया—“शीतकाल में कितने चीवरों की आवश्यकता होगी?” सभी भिक्षुओं ने उत्तर दिया—“भगवन्! तीन से ज्यादा चीवरों की आवश्यकता नहीं है।” भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को इतने ही वस्त्र साथ रखने के लिए कहा और यह निर्देश दिया कि इससे ज्यादा का संग्रह कष्ट का कारण बनता है और ऐसी संचय की प्रवृत्ति से बचना ही श्रेयस्कर है।

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◀

आत्मा की आवाज



मानवीय रूप को संयोजित करने वाले विभिन्न कारकों में अहं का भी मूल्य एवं महत्व माना जाता है, परंतु इसे समझने वाले लोग अत्यधिक कम हैं; क्योंकि अहं अदृश्य है, इसलिए उसे देखा-पहचाना नहीं जाता। वह क्या है इसका उत्तर तो उन कुछ एक व्यक्तियों के पास ही होता है, जो उसे समझ एक दिव्य रूपांतरण की विधा अपनाते हैं।

अहं बलशाली है तथा उसे समझने हेतु विचार-दृष्टि एवं सुदृढ़ अवलोकन की आवश्यकता होती है। अहं क्रियाशील तभी से हो जाता है, जब उसे बाह्य घटनाक्रमों के मध्य अपनी उपस्थिति का अंकन प्राप्त होता है। हमारे मन की अचेतनावस्था में सक्रिय वृत्तियाँ जब सहज ही जाग उठती हैं एवं हमें जगत् के यथार्थ स्वरूप का बोध होता है, तब हम आत्मा की निर्लिप्तता का अर्थ समझने लगते हैं एवं तब हमारा चिंतन सत्य के सुदीर्घ मार्ग पर, आत्मा के अमर आलोक में चलने लगता है तथा वही परिस्थितियाँ जो अभी तक हमें कठिनाई के रूप में दिखाई पड़ रही थीं, वही अब विकास एवं परिष्कार के मार्ग का द्योतक बन बैठती हैं।

अहं आत्मा की निर्दिष्ट प्रेरणा का प्रतिवहन करे एवं उसे अपने विकसित स्वरूप में अंतरात्मा का अवलंबन प्राप्त होवे, यही सुदृढ़ विचार-प्रणाली वह आधार है, जिसके द्वारा आत्मा का केंद्रीय स्वर अपनी पूर्ण मुखरित अवस्था को प्राप्त होता है तथा सत्य की पुकार पर मनुष्य का चिंतन एवं दृष्टिकोण परिष्कृत होते चलते हैं।

जब मन की वृत्ति पूर्ण रूप से बैठ जाए, मन यथार्थ में सत्य-वस्तु से प्रीति स्थापित कर ले तथा उसे अपनेपन की परिधि में समूचे जगत् का प्रतिष्ठान एवं सर्वत्र एक ही आत्मा के दर्शन होने लगें, तब वास्तव में वह आत्मा की केंद्रीय आवाज का प्रतिनिधि बन बैठता है।

आत्मा की अजर-अमर सत्ता को हम विचार से नहीं समझ सकते तथा उसे केवल भावना के तल पर ही अनुभव किया जा सकता है। आत्मा नित्य है, विशुद्ध है, अनुकरणीय है, महान है, चिरस्थायी है, परंतु उसका एक ही स्वर है, जिसे मनुष्य समझ सकता है एवं समझकर महान परिवर्तन का भागी बन सकता है—वह है आत्मा की दिव्य ज्योति का मानव को कल्याण की दिशा में प्रेषित करना।

जहाँ मनुष्य सत्य की इस दिव्य पुकार को समझ लेता है, कुचेष्टाओं को मिटा सत्यानुशीलन के पथ पर बढ़ चलता है, वहीं से यह दिव्य संस्कार उसे जड़ता एवं अंधकार से कहीं आगे, परमसत्ता के दिव्य संरक्षण में आलोक प्रदान करता है। व्यक्ति की मनोभूमि यदि परिष्कृत हो जाए, आत्मिक सत्य के प्रति दिशा एवं दृष्टिकोण उसे प्राप्त हो सके तो सहज ही महानता का पथ प्रशस्त होने लगता है एवं तब कुविचार एवं अवांछित विचार-प्रणाली का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। यही सत्य की प्रतिष्ठा है तथा इसके द्वारा जीवन में सर्वतोभावेन परिष्कार का पथ प्रशस्त होने लगता है।

हमें अपने विचारों का निरीक्षण करना चाहिए, स्वार्थ की, लिप्सा की, अनुचित अहंकार की एवं

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

मोहग्रस्तता की दीवारों को गिराकर प्रयत्नों द्वारा आत्मविकास के पथ पर चलना चाहिए। जहाँ सत्य की इस प्रकार प्रतिष्ठा हो जाएगी तथा मन को नियंत्रण में रखने का कुशल अभ्यास हो जाएगा, वहीं विचार विकृति के स्थान पर, महानता के अर्जन में जा लगेंगे एवं तब अहं का कोई दोष-दुर्गुण मनुष्य के पथ में बाधा न बन सकेगा। ऐसी परिस्थिति में हम बाह्य कुप्रभावों के वश में न रह कर, आत्मा की अमर ज्योति का साक्षात्कार करते हैं तथा उसे जीवन के हर व्यवहार में कार्यरूप दे, एक सफल-सार्थक जीवन के अधिकारी बनते हैं।

आत्मा जब तक अहं के कुजाल में रहेगी, उसे द्वंद्वात्मक दृष्टिकोण एवं विचारों की अधीरता का सामना करना पड़ेगा और जैसे ही उसने अहंमूलक चेष्टाओं को त्याग दिया, वैसे ही उसे अमरता का

संदेश सुनाई देता है तथा वह अपनी क्षुद्रता को त्यागकर, महान जीवन-पथ का अवलंबन ग्रहण करती है।

अहं का पूर्ण विसर्जन ही आत्मा का स्वराज्य है और वही उसका विकास-पथ है। उस पर चलने में उसे एक ही बाधा रहती है—जड़ता एवं अज्ञान के प्रति आसक्ति। जिस दिन उसे हृदय की दिव्य भावना अनुरूप मनोगति को निर्धारित करने एवं सत्य-वस्तु के प्रति निरंतर आगे बढ़ने का दिव्य भाव प्राप्त हो जाएगा, उस दिन आत्मा की सत्ता अधिक बलवान हो, जीवन के दिव्य रूपांतरण हेतु प्रयत्न-पुरुषार्थ करने लगेगी एवं तब जीवन का स्वरूप शुद्ध अभिव्यक्ति एवं हृदय के तारों की अभिव्यंजना बन बैठेगा। यही अहं के परित्याग एवं हृदय की दिव्य भावना के उजागर होने का प्रकाश-पथ है।

□

एक व्यक्ति गठिया रोग से ग्रस्त था। वैसे तो उसकी पत्नी उसकी सेवा बहुत करती थी, परंतु वाणी की कटुतावश वह उससे झगड़ती भी बहुत थी।

एक दिन पति ने तीर्थयात्रा पर जाने का प्रस्ताव रखा। उसकी पत्नी यह सुनकर उस पर बरस पड़ी और बोली—“तुम ढंग से चल भी नहीं पाते तो तीर्थयात्रा में तुम्हारी सेवा कौन करेगा?” पति ने पत्नी से कहा—“वह उसे संत एकनाथ के पास छोड़ दे, वह उसे ही तीर्थयात्रा मान लेगा।” पत्नी उसे संत एकनाथ के पास छोड़कर आ गई।

एक माह तक उसका पति संत एकनाथ के पास रहा। इस अवधि में उसकी पत्नी को अपने पति की बार-बार चिंता भी होती कि उसका ध्यान वहाँ कौन रख रहा होगा? परंतु जब वह एक माह बाद लौटी तो उसने देखा कि उसका पति तो पूर्णतया स्वस्थ हो गया है। संत एकनाथ ने उसकी इतने भाव से सेवा की कि वह नीरोग हो गया। संत उसकी पत्नी से बोले—“पुत्री! तू सेवाभावी तो है, परंतु सेवा का फल मन और वाणी के शुद्ध होने से ज्यादा मिलता है।” पत्नी को संत का कहा समझ में आ गया और उसका व्यवहार बदल गया।

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

महान संपदा है शील

शील का अर्थ होता है, जो हमें दुष्प्रभावों से बचाए, जो बहिर्गमन की चेष्टाओं के मध्य मनुष्य को आंतरिक अवलंबन एवं विचार-बुद्धि प्रदान करे। शील वह है, जो आदर्श के पालन हेतु मनुष्य को नियोजित करे; शील वह है, जो भीतर की संपदा का संरक्षण करे। आत्मा पर जमी विभिन्न परतों को एक योगी ही सुलझाने एवं समझने में सक्षम होता है, इसलिए यदि मनुष्य को अपनी सत्य-चेतना के द्वारा आत्मनिर्माण का पथ प्रशस्त करना है तो उसे शीलरूपी परम प्रसाद का अवलंबन ग्रहण करना होगा।

जो मनुष्य कुचेष्टाओं को दरकिनार कर, आदर्शों के अनुरूप अपनी मनोभूमि के निर्माण में सफल होता है, वह कभी भी अपनी आत्मशक्ति से वंचित नहीं होता तथा उसे दुर्गुण कभी नहीं घेरते। अपनी अंतरात्मा से स्वच्छ एवं निर्मल होने का नाम ही शील है, यह वह महान संपदा है, जिसके द्वारा मनुष्य अपना निर्माण करने में सक्षम होता है तथा उसे किसी भी प्रकार की कठिनाई अपने आत्मविकास में नहीं आती।

आत्मा की महानता में प्रतिष्ठित होना, हर विचार-वस्तु में उस सत्य-चेतना को प्रतिष्ठित करना, अपने अंतःकरण को पूर्ण पवित्र बनाना एवं बाह्य-जगत् से विधि अनुसार प्रयोजन लेना, यही वास्तव में वह पथ है, जिस पर चलकर आत्मोत्थान का पथ प्रशस्त किया जा सकता है। जब दिखे कि बाह्य दुर्गुण हमें अपने पथ से विमुख किए दे रहे हैं, एवं हम पर संसार के कुप्रचलन हावी होते दिखाई

पड़ रहे हैं तो हमें एक ही कार्य करना चाहिए, वह है अपनी आत्मा का स्मरण।

अत्यंत ही पवित्र मनोभूमि से साहस एवं सेवा की किरणें फूटा करती हैं। जहाँ यह नहीं, वहाँ पर कोई भी दूसरी प्रणाली असरकारक नहीं हो सकती। अपने भीतर की दिव्यता को जगाना, अपने आत्मानुसंधान की क्रिया-पद्धति को पहचानना, अपने अनुरूप जीवन की संरचना एवं भविष्य की योजना का निर्धारण करना, यही अध्यात्म की वह चरम सफलता है, जिसके बाद कहने को कुछ नहीं और मनन करने को बहुत कुछ रह जाता है।

अपनी अस्मिता की रक्षा करना जिस दिन हम सीख जाएँगे, जब हमें अपने दोष-दुर्भावों का पूर्ण रूप से पता लग जाएगा, जब आनंद की और किसी विराट उद्देश्य के लिए अपने को समर्पित करने की संपूर्ण संभावना मानव में दृष्टिगोचर होगी, तथा वह निरभिमानित चेतना में, अनंत के परिदृश्य में अपने को देखने लग जाएगा, उस क्षण जीवन में वास्तविक जाग्रति के, अपने आत्मोत्थान पथ के स्वर सुनाई पड़ेंगे।

ऐसे में मनुष्य चरित्र से महान एवं आत्मा से बलवान कहलाएगा, यही उसकी अमूर्त संभावना को मूर्त करने का, उसके विचारों में प्रज्ञा, निष्ठा एवं संतोष के अनावरण का प्रतिप्रश्न है, जिसे प्रत्येक विचारशील को समझना चाहिए तथा अपने जीवन में लागू कर, उदार आत्मीयता और उत्कृष्ट दृष्टिकोण का परिचय देना चाहिए।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

यही शील का मुख्य प्रयोजन है तथा इसके द्वारा मनुष्य सद्गुणी व विवेकसंपन्न बनता है, जिसने स्वयं को त्याग, तपस्या, तितिक्षा द्वारा परिष्कृत कर लिया, वही इसकी गुणवत्ता से, इसके महान प्रयोजन से एवं इसकी दूरदर्शी क्रियाप्रणाली से परिचित होता है तथा उसका जीवन त्याग-संवेदना से सिक्त महान एवं अनुकरणीय बन जाता है।

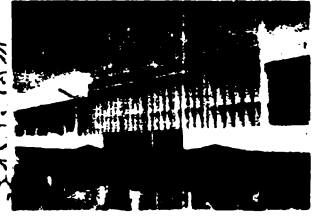
सद्गुण हमारी पहचान हैं तथा तप की प्राणाग्नि से वे जन्म लेते हैं—उन्हें जगाने एवं प्रयोग में लाने

सम्राट अशोक ने बौद्धधर्म अपनाने के बाद प्रजा के कल्याण के लिए अनेक कार्य किए। एक बार उन्होंने अपने अधीन सभी राजाओं को बुलाकर कहा—“आगामी वर्ष में जिस राजा का कार्य सर्वश्रेष्ठ होगा, उसे हम व्यक्तिगत रूप से पुरस्कृत करेंगे।” यह घोषणा सुनकर सभी राजा उत्साहपूर्वक अपने-अपने राज्यों में कार्य करने में जुट गए।

जनहित में किए गए उसके कार्यों को सुनकर सम्राट अशोक गदगद हो गए और सभी को संबोधित करते हुए बोले—“प्रजा का शोषण कर राज्य की आमदनी बढ़ाना शासक का कर्त्तव्य नहीं, बल्कि शासक का कार्य प्रजा को कष्टों-से मुक्त कराना है। यही शासक सर्वश्रेष्ठ शासक के पुरस्कार का अधिकारी है।”

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

अभिभावकों के व्यक्तित्व प्रकार पर शोध



विद्यार्थी जीवन की सफलता और सार्थकता का सबसे महत्वपूर्ण मानदंड है, उसकी शैक्षणिक उपलब्धि। परीक्षा के अच्छे परिणामों से भविष्य की दिशा को तय करने तथा स्वयं के लिए परिवार, समाज व कार्यक्षेत्र में एक सम्मानजनक स्थिति प्राप्त करने में अत्यंत सहायता मिलती है। यही कारण है कि विद्यार्थी और अभिभावक—दोनों के लिए शैक्षणिक उपलब्धि अत्यधिक महत्व रखती है और इसके लिए वे हर संभव प्रयास भी करते हैं।

शिक्षण संस्थानों में भी युवाओं के भविष्य को ध्यान में रखते हुए उनकी शैक्षणिक उपलब्धि को बढ़ाने वाले विभिन्न उपायों को अपनाया जाता है। एक विद्यार्थी के लिए अच्छे अंक प्राप्त करना एक बड़ी चुनौती होती है; क्योंकि इसमें उसके स्वयं के परिश्रम के साथ-साथ परिवार, स्कूल आदि के स्तर पर सहयोगी परिवेश की भी आवश्यकता होती है।

चूँकि शैक्षणिक उपलब्धि का संबंध विद्यार्थी के भविष्य और संपूर्ण जीवन से होता है, अतः इस दिशा में शिक्षाविदों, मनोविज्ञानियों, विशेषज्ञों और अनुसंधानकर्त्ताओं ने अपने-अपने स्तर पर ऐसे अनेक प्रभावकारी कारकों को चिह्नित किया है, जिनका सीधा संबंध विद्यार्थी की शैक्षणिक गुणवत्ता और उपलब्धि से है। पालन-पोषण की शैली और व्यक्तित्व के प्रकार ऐसे ही प्रभावशाली तत्त्व हैं, जो विद्यार्थी की शैक्षणिक उपलब्धि के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इस तथ्य की वैज्ञानिक रीति से पुष्टि करने तथा प्रामाणिक रूप से पालन-पोषण शैली व

व्यक्तित्व प्रकार के शैक्षणिक उपलब्धि से अंतर्संबंध के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से एक महत्वपूर्ण शोध अध्ययन कार्य को विगत दिनों संपन्न किया गया है।

यह शोधकार्य देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत शोधार्थी शुचिता अवस्थी द्वारा वर्ष-2019 में पूर्ण किया गया है। इस विशिष्ट शोध अध्ययन को विश्वविद्यालय के **श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी** के विशेष संरक्षण एवं डॉ० संतोष कुमार विश्वकर्मा के निर्देशन में संपन्न किया गया है।

इस अध्ययन का शीर्षक है—‘**परसीव्ड पैरेंटिंग स्टाइल एंड पर्सनलिटी एज कोरिलेट्स ऑफ अचीवमेंट**’। वैज्ञानिक एवं प्रायोगिक रीति से संपन्न इस शोध अध्ययन का उद्देश्य स्कूल जाने वाले विद्यार्थियों की औसत और उच्च शैक्षणिक उपलब्धि के आधार पर पालन-पोषण की शैली तथा व्यक्तित्व के प्रकार की पहचान करना है।

इसके साथ ही विभिन्न तरह की पालन-पोषण शैली और व्यक्तित्व प्रकारों के बच्चों में तथ्यात्मक रूप से शैक्षणिक उपलब्धि के अंतर को ज्ञात करना है। शोधार्थी द्वारा अपने अध्ययन के प्रयोग हेतु उत्तर प्रदेश के लखीमपुर खीरी के अँगरेजी माध्यम के विद्यालयों से 12 से 16 वर्ष की आयु वर्ग वाले 900 विद्यार्थियों का कोटा सैंपलिंग द्वारा चयन किया गया।

इन चयनितों में बालक-बालिकाएँ, दोनों सम्मिलित थे। शोध उद्देश्य के अनुरूप चयनित बच्चों को समूहों में विभाजित किया गया। पहले समूह में 600 प्रतिभागियों को सम्मिलित किया

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

गया, जिनमें पालन-पोषण शैली के 6 प्रमुख प्रकारों के अंतर्गत समान रूप से 6 समूह बनाए गए।

पालन-पोषण की 6 शैलियाँ, यथा— डेमोक्रेटिक, ऑटोक्रेटिक, एक्सेप्टिंग, रिजेक्टिंग, ओवर-प्रोटेक्टिंग और ओवर-डिमांडिंग। उक्त सभी शैलियों के अंतर्गत प्रत्येक में 100 प्रतिभागियों को रखा गया।

दूसरे समूह में 300 विद्यार्थियों को व्यक्तित्व प्रकारों के अंतर्गत सम्मिलित किया गया, जिसमें व्यक्तित्व प्रकार A, B और C के 3 समूह में 100-100 प्रतिभागियों को चयनित किया गया। प्रतिभागियों के चयन एवं वर्गीकरण की प्रक्रिया संपन्न करने के उपरान्त शोध उपकरण के माध्यम से शोध में प्रयुक्त महत्वपूर्ण तथ्यों को प्राप्त किया गया।

इसके लिए शोधार्थी द्वारा जिन शोध उपकरणों की सहायता ली गई, वे हैं—(i) डॉ. आनंद प्यारी एवं डॉ० राजकुमार कालरा द्वारा निर्मित चिल्ड्रन्स पर्सैप्शन ऑफ पैरेन्टिंग स्केल (CPPS) तथा (ii) शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित—टाइप ए, बी एंड सी पर्सनलिटी इन्वेन्ट्री।

इसके साथ ही वार्षिक परीक्षा परिणामों को शैक्षणिक उपलब्धि के संदर्भ में प्रयुक्त किया गया। शोध उपकरणों के संबंध में आवश्यक जानकारी, निर्देश, सावधानियाँ एवं मार्गदर्शन प्रदान करते हुए शोधार्थी द्वारा प्रत्येक विद्यार्थी को पर्याप्त समय दिया गया, ताकि शोध हेतु महत्वपूर्ण तथ्यों-आँकड़ों को प्रामाणिक रूप से प्राप्त किया जा सके।

शोध प्रयोग की अवधि समाप्त होने पर संगृहीत आँकड़ों, तथ्यों एवं शैक्षणिक परिणामों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोधार्थी ने यह पाया कि पालन-पोषण शैली और व्यक्तित्व के प्रकार का विद्यार्थी की शैक्षणिक उपलब्धि में महत्वपूर्ण स्थान है और इनकी उच्चता अथवा निम्नता का स्तर बच्चे के परीक्षा परिणाम को सकारात्मक

अथवा नकारात्मक रूप से प्रभावित करता प्रतीत होता है।

शोध परिणामों में निष्कर्ष रूप में यह भी पाया गया कि स्वीकारात्मक पालन-पोषण शैली अथवा अभिभावकत्व और टाइप-बी प्रकार के व्यक्तित्व गुण वाले बच्चों की शैक्षणिक उपलब्धि उच्चतम स्तर की रहती है। अतः यह कहा जा सकता है कि उक्त दोनों सार्थक प्रभावकारी कारकों को आधार बनाकर विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में बढ़ोत्तरी लाने में सफलता प्राप्त की जा सकती है।

इस शोध अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि शोधार्थी ने विद्यार्थी जीवन की उपलब्धि से संबंधित ऐसे अनछुये पहलुओं को सामने लाने तथा उनकी महत्ता को तथ्यात्मक व प्रामाणिक रूप से सामने लाने का प्रयास किया है, जिन पहलुओं को सामान्य तौर पर इतना महत्व नहीं दिया जाता है और न ही शैक्षणिक उपलब्धि के संदर्भ में इस दिशा में गंभीरता अपनाई जाती है।

ऐसे में यह अध्ययन शैक्षणिक उपलब्धि में उच्चता प्राप्त कराने वाले महत्वपूर्ण और आधारभूत पहलुओं की ओर देखने और जागरूक बनने में पर्याप्त मार्गदर्शन एवं प्रेरणा प्रदान करेगा। विशेषकर ऐसे अभिभावकों और बच्चों के लिए यह अत्यंत उपयोगी साबित होगा; जो शैक्षणिक उपलब्धि की उच्चता तो चाहते हैं, परंतु कामकाजी जीवन और अन्य जिम्मेदारियों के कारण बच्चों के लिए समय नहीं निकाल पाते हैं।

वस्तुतः माता-पिता का अपने बच्चों के साथ उचित और समायोजित संबंध उनके शारीरिक, मानसिक और संपूर्ण स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालता है, परंतु वर्तमान समय की विडंबना यही है कि बदलते सामाजिक परिवेश, जीवनशैली में आए जटिल परिवर्तनों ने इस संबंध को अत्यंत संवेदनशील स्थिति में ला खड़ा किया है।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

माता-पिता की अपेक्षाएँ, उनके द्वारा दिया जाने वाला दबाव, उनके द्वारा किया जाने वाला अनुरोध, सामाजिकता, मूल्य-आदर्श, आज्ञाकारिता उत्पन्न करने का जबरन प्रयास आदि कारक बच्चों के मनोवैज्ञानिक और चारित्रिक जीवन पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। इसके साथ ही प्रत्येक बच्चे की अपनी भावनाएँ, दृष्टिकोण और व्यक्तित्व वैशिष्ट्य भी होते हैं।

इन बातों को नजरअंदाज करने पर भी बच्चे का जीवन और उसकी उपलब्धियाँ बुरी तरह प्रभावित होते हैं। अतः पालन-पोषण की उपयुक्त शैली और व्यक्तित्व के प्रकार की पहचान हो जाने से बच्चों की शैक्षणिक उपलब्धि को ही नहीं, अपितु संपूर्ण व्यक्तित्व और जीवन को समुचित रूप से विकसित बनाया जा सकता है। इस दिशा में शोधार्थी का यह प्रयास महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है।

इस शोध अध्ययन के निष्कर्ष में यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि बच्चों की क्षमता को पहचानने और उनका उचित मार्गदर्शन करने में माता-पिता की अहम भूमिका होती है। अतः इस स्तर पर पारस्परिक समझ और घनिष्ठ संबंध का होना आवश्यक है।

इसके लिए अभिभावकों और बच्चों के बीच संवाद को विकसित करने के उपायों पर उचित महत्व दिया जाना चाहिए, ताकि माता-पिता अपने बच्चों की शैक्षणिक उपलब्धि, मानसिक या सामाजिक व नैतिक उन्नति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें। इसके साथ ही पालन-पोषण की विभिन्न शैलियों में से स्वीकारात्मक शैली को सकारात्मक रूप से ज्यादा प्रभावकारी और उपयुक्त पाया गया है।

इस शैली में माता-पिता अपने अभिभावकत्व को गैर-प्रतिबंधात्मक बनाए रहते हैं, अर्थात् अपनी ओर से कोई अपेक्षा, दबाव व बच्चों के स्तर पर

कोई सीमा या मानदंड निर्धारित नहीं करते, बल्कि उनकी बातों का स्वीकरण और पूर्णतया समर्थन करते हैं।

अध्ययन का दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य बच्चों का व्यक्तित्व प्रकार है। शोध परिणाम में पाया गया कि टाइप-बी व्यक्तित्व वाले बच्चों की शैक्षणिक उपलब्धि उच्च होती है; क्योंकि वे सहज, तनावमुक्त, शांत और धैर्यवान होते हैं तथा बिना किसी प्रतिस्पर्धा अथवा तनाव के एक समय में एक ही कार्य तन्मयता से करते हैं।

ऐसे बच्चे रचनात्मक और प्रसन्न रहने वाले होते हैं, जबकि टाइप-ए व्यक्तित्व प्रकार वाले बच्चे अत्यंत महत्वाकांक्षी, प्रतिस्पर्धी और अस्थिर मनोभूमि वाले होते हैं। निराशा, अवसाद और तनाव के ये आसानी से शिकार हो जाते हैं।

ऐसे में आवश्यक है कि माता-पिता को यदि लगता है कि उनका बच्चा टाइप-ए अथवा टाइप-बी व्यक्तित्व का है तो उन्हें इस ओर ध्यान केंद्रित कर ऐसे उपाय करने चाहिए, जिससे बच्चे में टाइप-बी व्यक्तित्व के गुणों को बढ़ाया जा सके।

वर्तमान समय में माता-पिता और बच्चों के बीच के संबंधों की संवेदनशीलता और युवाओं के भविष्य तथा संपूर्ण जीवन की दिशा को प्रभावित करने वाले अत्यंत महत्वपूर्ण पक्षों को उजागर करने वाला यह शोध अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक और उपादेयी सिद्ध होगा।

बच्चों का पालन-पोषण एक कठिन और महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। यदि माता-पिता पालन-पोषण में थोड़ी भी त्रुटि कर देते हैं तो उसका सीधा एवं व्यापक प्रभाव बच्चों के संपूर्ण जीवन पर पड़ता है। अतः पालन-पोषण की उचित शैली को अपनाकर तथा बच्चों के व्यक्तित्व को समझकर उनकी शैक्षणिक व अन्य उपलब्धियों में सहयोगी बना जा सकता है। □

त्यागने से पहले जानें अपना योग्य कर्म



(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की पाँचवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के चौथे श्लोक की विवेचना इससे पूर्व की किस्त में प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! तू संन्यास और त्याग, इन दोनों में से पहले त्याग के विषय में मेरा निश्चय सुन, क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ! त्याग तीन प्रकार का कहा गया है। भगवान यहाँ अर्जुन से कहते हैं कि अर्जुन! इससे पूर्व के दो श्लोकों में मैंने इन विषयों पर विभिन्न ज्ञानियों के अभिमत से तुम्हें परिचित कराया था और अब इस संदर्भ में मेरा क्या निश्चय है अथवा मेरा क्या अभिमत है, वह मैं तुझे सुनाता हूँ और उसमें से भी पहले त्याग को बताता हूँ।

भगवान कहते हैं कि—‘तत्र त्यागे मे निश्चयं शृणु’ उस त्याग के संदर्भ में मेरा निश्चय अभिप्राय या अंतिम मत सुनो। यहाँ भगवान त्याग के विषय में पहले कहते हैं; क्योंकि बिना त्याग को समझे, संन्यास को समझ पाना संभव नहीं है। भगवान ने पहले गीता में कहा भी है कि मात्र कर्म को छोड़ने से कोई निष्काम नहीं हो जाता और कर्म को संपूर्ण रूप से त्यागा भी नहीं जा सकता है। अतः सत्य मत दोनों के मध्य का ही है। इसीलिए वे अर्जुन को पहले त्याग के विषय में अपने अभिमत से परिचित कराना चाहते हैं।]

इसके बाद भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि—

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।

यज्ञो दानं तपश्चैव, पावनानि मनीषिणाम् ॥ 5 ॥

शब्दविग्रह—यज्ञ, दान, तपः, कर्म, न, त्याज्यम्, कार्यम्, एव, तत्, यज्ञः, दानम्, तपः, च, एव, पावनानि, मनीषिणाम्।

शब्दार्थ—यज्ञ, दान और तपरूप कर्म (यज्ञदानतपः कर्म), त्याग करने के योग्य नहीं है, (बल्कि) (न, त्याज्यम्), वह (तो) (तत्), अवश्य (एव), कर्तव्य है, क्योंकि (कार्यम्), यज्ञ (यज्ञः), दान (दानम्), और (च), तप

(ये तीनों) (तपः), ही (कर्म) (एव), बुद्धिमान पुरुषों को (मनीषिणाम्), पवित्र करने वाले हैं (पावनानि)।

अर्थात् यज्ञ, दान और तपरूपी कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिए, प्रत्युत उनको तो करना ही चाहिए; क्योंकि यज्ञ, दान और तप—ये तीनों ही कर्म मनीषियों को पवित्र करने वाले हैं। यहाँ भगवान एक महत्त्वपूर्ण संदेश देते हैं। वे अर्जुन से त्यागने योग्य बातों को करने से पूर्व ये बता रहे हैं कि क्या नहीं त्यागना चाहिए।

अर्जुन ने प्रश्न त्याग के संदर्भ में पूछा है, परंतु भगवान कृष्ण उसको त्याग के स्थान पर पहले अपनाने

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

योग्य बातें बताते हैं। जैसे हंस, दूध व पानी में से दूध को ग्रहण कर लेता है तो पानी अपने आप ही छूट जाता है, वैसे ही श्रीभगवान अर्जुन को पहले ये बताते हैं कि क्या अवश्य करें, ताकि उसके मन में क्या त्यागना है, ये और स्पष्ट हो सके।

इसीलिए भगवान यहाँ पर मनीषी शब्द का प्रयोग करते हैं; क्योंकि मनीषी उसे कहते हैं, जो विवेकवान और विचारशील हो। जो मनीषी होगा वो ये जानता ही है कि शास्त्र कहते हैं—‘**क्रतुमयः पुरुषः**’ अर्थात् मनुष्य कर्म करे बिना नहीं रह सकता तो जब कर्म करने ही हैं तो वो कर्म किए जाएँ, जो परहित में हों, आत्मकल्याण का साधन बनें और मनुष्य के कल्याण के पथ को प्रशस्त करें। इसीलिए भगवान कृष्ण यहाँ ऐसा कहते हैं कि जो कर्म न त्यागे जाएँ, वे मनीषी को पवित्र बनाते हैं।

ध्यान से देखें तो भगवान यहाँ दो मुख्य बातें कहते हैं। पहला—यज्ञ, दान एवं तप—ये तीनों कर्म त्याज्य नहीं हैं—इन्हें करना ही चाहिए। दूसरा—ये तीनों कर्म साधक को, पावक बनाने वाले या पवित्र करने वाले हैं। ऐसा इसलिए कि ये चित्तशुद्धि का आधार हैं।

मनुष्य के पूर्वकृत कर्म ही चित्त की भूमि का निर्माण करते हैं। यदि चित्त में कुसंस्कारों का

जाल विद्यमान हो तो जब तक उनकी शुद्धि न हो जाए, तब तक आत्मा को जन्म ग्रहण करना ही पड़ता है। अतः उन पूर्वकृत कर्मों की शुद्धि के लिए ऐसे कर्मों को करना अनिवार्य है, जो हमें पवित्र, पावक बनाते हैं, ताकि चित्त निर्मल बन सके।

इसीलिए भगवान यहाँ कहते हैं कि—‘**कार्यमेव तत्**’ अर्थात् उनको तो करना ही चाहिए, ताकि कहीं कोई इस भ्रम में आकर कि कर्म नहीं करेंगे, इन्हीं कर्मों का त्याग कर दे तो चित्त का निर्भार होना संभव नहीं है। इसीलिए श्रीभगवान कहते हैं यदि इन्हें न करते रहे हों तो इन्हें आज से ही अपना लें एवं अवश्य करें। भगवान ने पहले भी गीता (2/51) में कहा है कि—

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।

अर्थात् जो मनुष्य समत्व बुद्धि से युक्त होकर कर्मजन्य फल का त्याग कर देते हैं, वे ही मनीषी हैं। कहने का अर्थ मात्र इतना ही है कि वास्तविक मनीषी और त्यागी वे हैं, जो उन्हीं कर्मों का त्याग करते हैं, जो कर्म बंधन का कारण बनते हैं, परंतु उन कर्मों का त्याग नहीं करते, जो चित्त को पवित्र एवं निर्मल बनाते हैं। इसीलिए श्रीभगवान ने सबसे पहले ऐसे ही कर्मों का उल्लेख किया है। (क्रमशः)

“**ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का अधिकारी कौन है?**”—शिष्य ने गुरु से प्रश्न किया।

गुरु बोले—“**वत्स! जिसकी भोगों की इच्छा दूर हो गई है, जिसके कोई मनोरथ शेष न हों, जिसकी बुद्धि व्युत्पन्न हो गई हो, वही ब्रह्मज्ञान का अधिकारी है; क्योंकि ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का अर्थ अपने स्व में प्रतिष्ठित होना है।**”

▶ ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◀

नवधा भक्ति से रसमय हुआ विश्वविद्यालय



इस बार की संध्याकालीन नवरात्र की कक्षाएँ कुलाधिपति डॉ० प्रणव पंड्या जी द्वारा विशेष उद्देश्य से प्रसारित की गई थीं। चैत्र नवरात्र का विषय था—‘श्रीरामचरितमानस में माता शबरी की योग-साधना के नौ सोपान : नवधा भक्ति के विशेष संदर्भ में’।

भक्ति वह अमृत रस है, जिसका पान कर हर भक्त परम तृप्ति का अनुभव करता है। चाहे कितनी भी योग-साधना की जाए, किसी भी तरह की योग-साधना में निरत रहा जाए, लेकिन जब तक साधक भक्ति रस का अनुभव नहीं करता, भक्तियोग को अपने जीवन में समाहित नहीं करता, तब तक उसकी साधना भी नीरस होती है।

इस नवरात्र के अवसर पर एक ऐसी ही भक्त (माता शबरी) व उनकी योग-साधना पर चर्चा की गई, जिसकी आभा, जिसकी संवेदना, जिसकी भक्ति, जिसकी जीवन-प्रेरणा सदियों से आज तक वैसे ही सुगंधित है, जैसे कभी त्रेतायुग में प्रभु श्रीराम के समय थी। नवरात्र की इन कक्षाओं को नवरात्र के नौ दिनों में संपूर्ण रूप से प्रसारित किया गया।

प्रथम दिवस—इसमें माता शबरी का संपूर्ण परिचय देते हुए उनकी जीवनगाथा का वर्णन किया गया कि वे किस तरह मतंग मुनि के आश्रम पहुँचीं और आजीवन भक्ति योग-साधना के मार्ग पर बढ़ते हुए प्रभु श्रीरामचंद्र से मिलीं। प्रभु श्रीरामचंद्र से उनका मिलन व दर्शन कुछ ऐसा ही था, जिसे शब्दों में उनके लिए अभिव्यक्त करना संभव नहीं

था, उस समय माता शबरी के आनंद की कोई सीमा ही नहीं थी।

उनके मुख से कोई शब्द नहीं निकल रहे थे, उनसे भगवान की स्तुति भी नहीं की जा रही थी, तब भगवान ही उन्हें नवधा भक्ति का उपदेश देते हैं और उसे ध्यानपूर्वक सुनने के लिए कहते हैं और साथ में यह भी कहते हैं कि इन 9 भक्तियों में से एक भी भक्ति जिस किसी व्यक्ति में होती है, वह मुझे अत्यंत प्रिय होता है और तुम्हारे अंदर तो ये सभी 9 भक्तियाँ दृढ़ हैं, इसलिए जो गति योगियों को भी अति दुर्लभ है, वह आज तुम्हारे लिए सुलभ हो गई है।

अरण्यकांड में ऐसी 2 स्त्रियों की कथाएँ आती हैं, जो भगवान श्रीराम से मिलती हैं— शबरी की कथा और शूर्पणखा की कथा। पहली कथा शूर्पणखा की है, जो दंडकारण्य में भगवान श्रीराम से मिलती है। शूर्पणखा अपना असली रूप बदलकर सुंदर कपड़े पहनकर और श्रृंगार धारण करके भगवान श्रीराम के पास आती है, परंतु भगवान श्रीराम उस पर अपनी दृष्टि भी नहीं डालते।

भक्ति का संबंध हृदय से जुड़ता है और गोस्वामी जी शूर्पणखा के परिचय देने के साथ उसके हृदय की विशेषता बताते हुए कहते हैं कि—

सूपनखा रावन कै बहिनी।

दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी ॥ —3/16/3

शूर्पणखा रावण की बहन है और उसके हृदय की तुलना तो सर्पिणी से ही की जा सकती है।

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

अब दूसरी कथा शबरी की है, जिसके पास चलकर भगवान श्रीराम स्वयं जाते हैं और उससे अपना नाता जोड़ना चाहते हैं। जबकि शबरी उस समय दिखने में अत्यंत वृद्ध हो गई थी, वह कोई सुंदरी नहीं थी, उसके कपड़े यानी वेष-विन्यास भी बहुत सुंदर नहीं थे, लेकिन शबरी का मन बहुत स्वच्छ, निर्मल और सुंदर था, इसलिए भगवान उसके लिए हुए जूठे बेर और कंद-मूल फल खाते हैं, उसे नवधा भक्ति का उपदेश देते हैं एवं उससे अपना भक्ति का नाता जोड़ते हैं और साथ ही शबरी से माता सीता का पता पूछते हैं और माता सीता की खोज में शबरी का मार्गदर्शन चाहते हैं।

द्वितीय दिवस—इस दिन स्तुति के मर्म, महत्त्व व रहस्य पर चर्चा की गई, वस्तुतः नवधा भक्ति का प्राकट्य ही तब होता है, जब शबरी को लगता है कि वे इस योग्य भी नहीं हैं कि प्रभु की स्तुति तक कर सकें, इसलिए वे प्रभु से कहती हैं—

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी।

पर भगवान श्रीराम शबरी की इस असमर्थता की भावना का उत्तर एक विलक्षण पद्धति से देते हैं। वे कहते हैं कि मैं आपको नवधा भक्ति सुनाना चाहता हूँ, उसे आप एकाग्र मन से सुनें और नवधा भक्ति के उपदेश के बाद प्रभु शबरी से कहते हैं कि ये 9 भक्तियाँ जो हमने कहीं हैं, वो सभी आपके अंदर विद्यमान हैं।

इस तरह प्रभु श्रीराम, नवधा भक्ति के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से शबरी जी की स्तुति करते हैं, यदि वे प्रारंभ में ही कह देते हैं कि वो शबरी की स्तुति कर रहे हैं, तो शबरी जी उसे ध्यानपूर्वक सुन नहीं पातीं, इसलिए नवधा भक्ति उपदेश के माध्यम से वे शबरी जी की स्तुति करते हैं और संसार को भक्ति का उपदेश देते हैं।

तृतीय दिवस—इस दिन नवधा भक्ति उपदेश के प्रथम सूत्र पर विचार-विमर्श करने के साथ वक्ता व श्रोता के गुणधर्मों पर गहन मंथन किया

गया। किसी भी संवाद में वक्ता व श्रोता दोनों का महत्त्व है। एक के भी अभाव में संवाद होना संभव नहीं है।

श्रीरामचरितमानस में श्रोता में कौन-कौन से गुण होने चाहिए, इसके बारे में उत्तरकांड में भगवान शिव माता पार्वती से कहते हैं—

**श्रोता सुमति सुशील सुचि कथा रसिक हरि दास ।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास ॥**

—7/69ख

अर्थात् हे उमा! सुंदर बुद्धि वाले, सुशील, पवित्र कथा के प्रेमी और हरि के सेवक श्रोता को पाकर सज्जन अत्यंत गोपनीय रहस्य (सबके सामने प्रकट न करने योग्य) को भी प्रकट कर देते हैं। इस तरह श्रोता में ये चार गुण अवश्य होने चाहिए—

1. सुमति (सुंदर बुद्धि),
2. सुशील (सुशील या सच्चरित्र),
3. सुचि कथा रसिक (पवित्र कथा के प्रेमी),
4. हरिदास (हरि के सेवक)।

और माता शबरी, श्रोता के इन चारों गुणों से ओत-प्रोत थीं। भगवान श्रीराम, शबरी के समक्ष नवधा भक्ति का आरंभ करते हुए कहते हैं कि

प्रथम भगति संतन्ह कर संग।

अर्थात् मेरी पहली भक्ति है—संतों का संग। श्रीरामचरितमानस में ऐसा कोई भी कांड नहीं है, जहाँ पर सत्संग की महिमा नहीं गाई गई हो। 'कुसंग कितना भयावह होता है और सत्संग कितना कल्याणकारी होता है' इस बारे में गोस्वामी तुलसीदास ने पूरे ग्रंथ में बार-बार इस बात को दोहराया है।

चतुर्थ दिवस—इस दिन माता शबरी की योग-साधना में नवधा भक्ति के प्रथम सोपान पर विस्तृत चर्चा की गई। प्रभु श्रीराम द्वारा नवधा भक्ति में सत्संग को प्रथम स्थान में रखना, मानो यह संकेत देने के लिए है कि उनकी दृष्टि में संत और उनके संग का महत्त्व सर्वोपरि है। भगवान श्रीराम

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

यह बताना चाहते हैं कि मेरी भक्ति पाने के लिए पहली आवश्यकता है कि व्यक्ति संतों के पास जाए और संतों से जुड़े।

इस प्रकार भगवान श्रीराम, नवधा भक्ति में संत की महिमा का 3 बार स्मरण कराते हैं—पहले, छठवें व सातवें सोपान में। तात्पर्य यह है कि वे यह बताना चाहते हैं कि व्यक्ति संत के आश्रय से ही भगवान की भक्ति पा सकता है।

महर्षि पतंजलि भी साधुपुरुषों के संग व उनके चिंतन को बहुत महत्त्व देते हैं, इसलिए अपने योगसूत्र में कहते हैं—

वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥ 1/37 ॥

अर्थात् जिस पुरुष के राग-द्वेष सर्वथा नष्ट हो चुके हैं, ऐसे विरक्त पुरुष को ध्यान बनाकर अभ्यास करने वाला अर्थात् उसके विरक्त भाव का मनन करने वाला चित्त भी स्थिर हो जाता है।

साधु पुरुषों के संग का क्या महत्त्व है और इसका क्या प्रभाव व परिणाम होता है, इसके कई उदाहरण श्रीरामचरितमानस में हैं जैसे—हनुमान जी के संग से लंकिनी को सद्गति मिली, विभीषण जी को लंका का राज्य, सुग्रीव को किष्किंधा का राज्य मिला और भगवान का सान्निध्य-सहकार मिला।

नारद जी के संग से जयंत कौवे को भगवान की शरण मिली। काकभुशुंडि जी के संग से गरुड़ जी के भ्रमों का निवारण हुआ है और भगवान की महिमा का ज्ञान हुआ। भगवान शिव के संग से पार्वती जी के मन के भ्रम दूर हुए और उन्हें रामकथा का मर्म ज्ञात हुआ।

हनुमान जी के संग से लंका में दुःखी—असहाय सीता जी के मन में विश्वास जगा, त्रिजटा के संग से सीता जी के मन को सहारा मिला। मतंग मुनि के संग से शबरी के जीवन में कायापलट हुआ और अंत में उन्हें भगवान के दर्शन हुए।

पंचम दिवस—इस दिन नवधा भक्ति के दूसरे सोपान पर चर्चा की गई। श्रीरामचरितमानस में

भगवान श्रीराम, अपनी दूसरी भक्ति के बारे में कहते हैं—

दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।

अर्थात् कथा-श्रवण में रति होना ही मेरी दूसरी भक्ति है। घटनाओं के रूप में भगवान राम की कथा को, उनकी संपूर्ण गाथा को दोहरा देना ही कथा नहीं है। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि रामकथा कहने का उद्देश्य क्या है? और इसलिए यह प्रश्न भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है कि रामकथा किसके माध्यम से कही जा रही है?

कालनेमि भी रामकथा सुनाता है और हनुमान जी जैसे सर्वश्रेष्ठ कथावाचक को सुनाता है, पर उसके पीछे उसका उद्देश्य अच्छा नहीं है। जबकि संतों के माध्यम से कही जाने वाली रामकथा का उद्देश्य और परिणाम, दोनों ही मंगलप्रद होते हैं।

हनुमान जी रामकथा के अद्वितीय वक्ता व श्रोता हैं। हनुमान जी परम बलवान व बुद्धिमान हैं, पर वे मानते हैं कि जीवन का कल्याण जिस माध्यम से हो सकता है, वह तो श्रीरामकथा ही है। हनुमान जी श्रीरामचरितमानस में कथावाचक के रूप में विविध प्रसंगों में दिखाई देते हैं और जहाँ भी उन्हें रामकथा सुनने को मिलती है, उसे भक्तिभाव से सुनने के लिए वे श्रोता बनकर बैठ जाते हैं।

माता शबरी के जीवन की यदि बात की जाए, तो नवधा भक्ति की दूसरी भक्ति उनमें पूरी तरह से ओत-प्रोत थी। वे भगवान की कथा में अति रुचि रखती थीं। ऋषि मतंग उन्हें भगवान की कथा सुनाते थे, जिसे वे पूरे मन से, भक्तिभाव से सुनती थीं और उन्हीं कथा-प्रसंगों का सतत स्मरण वे आजीवन करती रहीं।

षष्ठ दिवस—इस दिन नवधा भक्ति के तीसरे सोपान की चर्चा की गई। भक्त शबरी के समक्ष प्रभु श्रीराम, अपनी तीसरी भक्ति का स्वरूप प्रकट करते हुए कहते हैं—

► **‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष** ◄

गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान ।

अर्थात् अभिमानशून्य होकर गुरुदेव के चरणों की सेवा करना, यह मेरी तीसरी भक्ति है ।

अतः भक्तिभावपूर्वक गुरु की सेवा तो शिष्य को करनी ही चाहिए पर इसके साथ जुड़ा हुआ शब्द है—अमान यानी अभिमानरहित होकर गुरु की सेवा करना—यही भक्ति है । इसलिए इस अमान शब्द के मर्म को जानना चाहिए ।

अमान का अर्थ है—अभिमानरहित होना । कई व्यक्तियों के विषय में बहुधा यह सुना जाता है कि वे अभिमान से भरे हुए हैं । इसका अर्थ है कि अभिमानी व्यक्ति अपने आप को पूर्ण और सर्वश्रेष्ठ मानता है । वह मानो एक ऐसा बरतन है, या पात्र है, जो पूरा-का-पूरा अभिमान से भरा हुआ है ।

ऐसी स्थिति में यदि कोई कल्याणकारी वस्तु दे भी रहा हो, तो अभिमानी व्यक्ति उसे कैसे ग्रहण कर पाएगा ? गुरु का उपदेश उसमें समाएगा कैसे ? अतः अभिमान की भावना से मुक्त हुए बिना गुरु की सेवा करना, यह तो प्रदर्शन मात्र है, भक्ति नहीं है और ऐसी सेवा का परिणाम कल्याणकारी नहीं हो सकता ।

गुरु शब्द के अनेक अर्थ हैं । गुरु का एक अर्थ होता है—भारी । इसका अभिप्राय है शिष्य अपने आप को लघु माने और गुरु को भारी अर्थात् श्रेष्ठ माने, पर रावण तो अपने आप को श्रेष्ठ और गुरु को तुच्छ सिद्ध करना चाहता है । ऐसा व्यक्ति गुरु के द्वारा कल्याण प्राप्त कर सके, यह संभव नहीं है । अमान होकर गुरु की सेवा करने के पीछे यही संकेत है कि शिष्य अभिमान से मुक्त होकर गुरु की सेवा करे ।

गुरु की सेवा करते समय यदि शिष्य यह अनुभव करे कि मैं सेवा करके धन्य हो रहा हूँ, तो वह सही दिशा में बढ़ रहा है । पर यदि वह यह भाव रखे कि मैं ही गुरुदेव पर कृपा करके उन्हें धन्यता प्रदान कर रहा हूँ, तो यह उस शिष्य के लिए दुर्भाग्य की बात है ।

व्यक्ति को यदि बुखार हो जाए, तो उसे भोजन अच्छा नहीं लगता । इसी प्रकार जब तक मन में रोग बने रहते हैं, तब तक व्यक्ति को भगवान की कथा में, भक्ति में रस की अनुभूति नहीं हो सकती, पर गुरुदेव की यही विशेषता है कि

समन सकल भव रुज परिवारू ।

अर्थात् वे मानस के समस्त रोगों को दूर कर देते हैं । फिर व्यक्ति का मोह विनष्ट हो जाता है और वह प्रभु की भक्ति प्राप्त कर धन्य हो जाता है ।

सप्तम दिवस—इस दिन नवधा भक्ति के चौथे सोपान की चर्चा की गई । प्रभु श्रीराम अपनी चौथी भक्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं—

चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान ।

अर्थात् जो व्यक्ति कपट छोड़कर मेरे गुणों का गायन करता है, वह अपने जीवन में भक्ति के चौथे रूप को पा लेता है । इसमें प्रयुक्त दो शब्दों 'कपट तजि' और 'गान' में भक्ति-साधना का तत्त्व छिपा हुआ है । गान अर्थात् जो गाया जा सके । भगवान के गुणों का भक्ति-भावना के साथ गायन करना ही सही अर्थों में गायन कहा जा सकता है ।

भगवान दूसरी भक्ति के रूप में कथा-प्रसंग में प्रेम की बात कहने के बाद जब यह कहते हैं कि कपट छोड़कर मेरे गुणों का गायन करना मेरी चौथी भक्ति है, तो प्रश्न यह उठता है कि कथा और गायन इन दोनों में कोई भेद है क्या ? और भगवान ने कथा को गायन से पहले भक्ति के क्रम में स्थान क्यों दिया है ? मानस में कथा और गायन, दोनों का बार-बार उल्लेख किया गया है । दोनों ही भगवान के लीला, चरित्र और गुणों से संबद्ध हैं, पर दोनों में एक अंतर है ।

कथा में यद्यपि मन और बुद्धि दोनों का महत्त्व है, पर इसमें बुद्धितत्त्व की प्रधानता होती है, क्योंकि इसमें भगवच्चरित्र का विश्लेषण कर उसे समझने-समझाने का प्रयास किया जाता है; जबकि गायन की वृत्ति आनंद से जुड़ी हुई है । आनंदानुभूति की

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

अभिव्यक्ति गायन के माध्यम से बहुधा की जाती है। इसमें संगीत का भी समावेश हो सकता है।

भगवच्चरित्र से आनंद की प्राप्ति के लिए गायन और प्रभु के लीला-चरित्रों को समझने, जानने के लिए कथा का आश्रय लिया जाता है। जब भगवान श्रीराम कहते हैं कि चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुणों का गायन करना चाहिए।

गायन करने में सबसे पहले जिनका स्मरण आता है, वो हैं—नारद मुनि, जो हर समय, हर क्षण, हाथों में वीणा व करतार लेकर भगवान के गुण व नाम का गायन करते रहते हैं।

मानस में दो प्रसंग ऐसे हैं, जिसमें एक प्रसंग में नारद जी के गायन में अभिमान है और दूसरे प्रसंग में समर्पण व भक्ति है। पहले प्रसंग में गोस्वामी जी कहते हैं—

एक बार करतल बर बीना।

गावत हरि गुन गान प्रबीना ॥

छीरसिंधु गवने मुनिनाथा।

जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा ॥

—1/127/3, 4

यहाँ पर नारद जी भगवान के गुणों का ही गायन कर रहे हैं, पर इस समय गोस्वामी जी उन्हें भक्त या ज्ञानी न कहकर 'गान प्रबीना' की उपाधि से ही विभूषित करते हैं; क्योंकि यहाँ पर नारद जी के गायन में संगीत और गायन का रस तो था, पर भगवत्प्रेम का रस नहीं था, लेकिन यह एक व्यंग्य है कि नारद जी को ज्ञानी या भक्त के स्थान पर कला में प्रवीणता की विशेषता प्रदान की गई है, यह तो उनके महत्त्व को घटाना ही है और दूसरा प्रसंग है, जिसमें जब नारद जी प्रभु श्रीराम से मिलने जाते हैं तो गोस्वामी जी कहते हैं—

गावत राम चरित मृदु बानी।

प्रेम सहित बहु भाँति बखानी ॥

—3/40/9

नारद जी पहले जब भगवान के गुणों का गायन कर रहे थे, तो कला प्रदर्शन के लिए गा रहे थे, उस गायन में अहंकार का संपुट था, पर अब वे अहंकाररहित होकर निर्मल मन से भक्ति व प्रेम के साथ गा रहे हैं, वे भगवान के गुणों को भीतर हृदय में अनुभव करते हुए प्रेमपूर्वक गायन कर रहे हैं और यही है—नवधा भक्ति का चतुर्थ सोपान यानी कपट छोड़कर प्रभु के गुणों का प्रेमसहित गान।

अष्टम दिवस—इस दिन नवधा भक्ति के पाँचवें व छठवें सोपान की चर्चा की गई। भगवान श्रीराम शबरी जी के समक्ष नवधा भक्ति का उपदेश देते हुए अपनी पाँचवीं भक्ति कहते हैं कि

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।

पंचम भजन सो बेद प्रकासा ॥

—3/35/1

दृढ़विश्वास के साथ मेरे मंत्र का जप करना, यह मेरी पाँचवीं भक्ति है। वास्तव में मंत्रजाप का तात्पर्य क्या है?

मननात् त्रायते इति मन्त्रम्।

अर्थात् जो मनन करने पर जप करने वाले की रक्षा करे, उसका नाम मंत्र है। जप करने में मंत्र की आवृत्ति तो होगी ही, पर मनन का तात्पर्य है उस मंत्र के अर्थ को हृदयंगम करना।

मंत्र का अर्थ केवल पंडितों से या गुरुजनों से पूछकर जान लेना ही पर्याप्त नहीं है। जब आप जप करते हैं, तो मंत्र स्वयं अपना अर्थ प्रकट करता है। यही अनुभव सही मंत्रजाप से मिलने वाला अद्भुत आनंद है।

भगवान श्रीराम जब कहते हैं—

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।

अर्थात् दृढ़ विश्वास से मंत्रजाप करना मेरी भक्ति है, तो इसका अर्थ है कि भक्ति का प्राण तो विश्वास है। भगवान श्रीराम, भक्त शबरी जी के सामने अपनी छठी भक्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं—

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

छठ दम सील बिरति बहु करमा ।

निरत निरंतर सज्जन धरमा ॥

—3/35/2

अर्थात् इंद्रिय-दमन (इंद्रियों का निग्रह), शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र), बहुत सारे कार्यों से वैराग्य और निरंतर संतपुरुषों के धर्म (आचरण) में यानी सज्जनों के धर्म में प्रवृत्त रहना मेरी छठी भक्ति है ।

नवधा भक्ति के इस छठवें सोपान की व्याख्या में प्रभु श्रीराम सबसे पहले जिस शब्द का प्रयोग करते हैं, वह है—दम । ‘इंद्रिय दमन’ या ‘मन का दमन’ कहने के पीछे प्रभु श्रीराम का भाव यह है कि जहाँ गति और शक्ति होती है, उसे नियंत्रित करना या उसका दमन करना परमावश्यक है ।

गति और शक्ति के बिना, व्यक्ति के कार्य समग्र रूप से संपन्न नहीं हो सकते, पर जहाँ पर ये दोनों हों, वहाँ पर दुर्घटना की आशंका भी बनी रहती है ।

इसलिए तीव्रगति के वाहनों में ब्रेक अवश्य होते हैं अन्यथा उनकी गति विनाशकारी भी सिद्ध हो सकती है । यह ब्रेक ही दम यानी दमन है । गति पर नियंत्रण की आवश्यकता केवल वाहनों तक ही सीमित न होकर अन्य स्थलों पर भी है, जहाँ पर गति व शक्ति का प्रयोग है । इस दृष्टि से तीव्रतम गति वाले मन तथा इंद्रियों को भी नियंत्रण में रखने की आवश्यकता है अन्यथा इनकी गति भी दुःखदायी और विनाशकारी हो सकती है ।

छठी भक्ति के छठ दम सील बिरति बहु करमा ।

तो उनका यह कहना है कि इंद्रिय दमन के साथ शील का होना भी आवश्यक है । शील का क्या अर्थ है ? दूसरों की भावनाओं का ध्यान रखने वाला, दूसरों के दुःख को समझकर उसके अनुरूप आचरण करने वाला, सच्चरित्र (अच्छे स्वभाव वाला) व्यक्ति शीलवान कहलाता है ।

शील को मानस में सबसे ज्यादा प्रशंसनीय गुण माना गया है । भगवान राम के जिस गुण पर संसार के सभी लोग मुग्ध हैं, वह उनका शील ही है । माता सीता जी से हनुमान जी की भेंट के उपरान्त जब वो उन्हें भगवान श्रीराम का प्रिय जानकर आशीर्वाद देती हैं, तो कहती हैं—

होहु तात बल सील निधाना ।

अर्थात् हे तात ! तुम बल और शील के निधान होओ । यहाँ पर माता सीता ने हनुमान जी को बलवान होने के साथ-साथ शीलवान होने का भी आशीर्वाद दिया, क्योंकि शीलवान ही अपने बल का सही दिशा में, सही उपयोग कर सकता है । इंद्रियदमन करने वालों में बहुधा एक अभिमान आ जाता है कि मैं कितना संयमी हूँ, कितना बड़ा त्यागी हूँ । अपनी इस श्रेष्ठता के अहं के कारण प्रायः उनमें शील का अभाव देखा जाता है । इसलिए भगवान श्रीराम ने छठवीं भक्ति में यह कहा है कि दम के साथ शील गुण होना आवश्यक है ।

नवम दिवस—इस दिन नवधा भक्ति के 7वें, 8वें व 9वें सोपान की चर्चा की गई । भगवान श्रीरामचंद्र जी, भक्त शबरी के समक्ष नवधाभक्ति के 7वें सोपान की बात करते हुए कहते हैं कि

सातवँ सम मोहि मय जग देखा ।

मोतें संत अधिक करि लेखा ॥

अर्थात् जगत् भर को समभाव से मुझमें ओत-प्रोत देखना और संतों को मुझसे भी अधिक करके मानना । नवधा भक्ति का आठवाँ सोपान है—

आठवँ जथालाभ संतोषा ।

सपनेहुँ नहि देखइ परदोषा ॥

अर्थात् जो कुछ मिल जाए, उसी में संतोष करना और स्वप्न में भी पराये दोषों को न देखना । संतोष का गुण उस धन के समान है, जिसके होने पर व्यक्ति परम संतुष्ट व मन में शांति व प्रसन्नता को उपलब्ध होता है और जिसके अभाव में व्यक्ति के मन में लोभ का उदय होता है । किष्किंथाकांड

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◀

में जब वर्षा ऋतु बीत जाने पर शरद ऋतु आती है, तो उसके बारे में श्रीरामचंद्र जी कहते हैं कि—

उदित अगस्ति पंथ जल सोषा ।

जिमि लोभहि सोषइ संतोषा ॥

अर्थात् अगस्त्य के तारे ने उदय होकर मार्ग के जल को सोख लिया, जैसे—संतोष लोभ को सोख लेता है। नवधा भक्ति का नवाँ सोपान है—

नवम सरल सब सन छलहीना ।

मम भरोस हियँ हरष न दीना ॥

अर्थात् सरलता और सबके साथ कपटरहित बरताव करना, हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और दैन्य (विषाद) का न होना। इस तरह नवीं भक्ति है—(1) कपटरहित बरताव के साथ सरलता होना और (2) चाहे स्थिति कितनी ही हर्षपूर्ण व विषादग्रस्त हो, हर परिस्थिति में भगवान का भरोसा रखना और मन का हर्ष व विषाद से रहित होना।

प्रायः देखा जाता है कि लोग बाहर से सरल व मधुर प्रकृति के दिखते हैं, मीठा बोलते हैं, लेकिन मन से दूसरों के साथ छल-कपट करते हैं, ऐसे लोग बहुत ही घातक और दुष्ट प्रकृति के होते हैं, जैसे—बगुला का आचरण, गोस्वामी जी ऐसे लोगों के बारे में उत्तरकांड में कहते हैं—

झूठइ लेना झूठइ देना ।

झूठइ भोजन झूठ चबेना ॥

बोलहिँ मधुर बचन जिमि मोरा ।

खाइ महा अहि हृदय कठोरा ॥

दुष्ट व्यक्ति लेन-देन के व्यवहार में झूठ का आश्रय लेकर दूसरों का हक मार लेते हैं और झूठी डींग हाँकते हैं। जैसे—मोर बहुत मीठा बोलता है, परंतु उसका हृदय ऐसा कठोर होता है कि वह महान विषैले साँपों को भी खा जाता है। वैसे ही दुष्ट व्यक्ति ऊपर से मीठे वचन बोलते हैं, परंतु हृदय से बड़े ही निर्दयी होते हैं।

इसलिए भगवान श्रीराम कपटरहित सरलता को अपनी नवीं भक्ति कहते हैं। भगवान श्रीराम द्वारा कही जाने वाली नवीं भक्ति का गुण तो तत्त्वज्ञानी संतों व भक्तों में देखने को मिलता है। सरल हृदय के साथ दूसरों से कपटरहित बरताव करना तभी संभव है, जब व्यक्ति इस संसार को भगवान का स्वरूप माने।

इस तरह यदि ध्यान दिया जाए, तो भगवान श्रीराम अपनी नवधा भक्ति में केवल पहली भक्ति को छोड़कर अन्य सभी भक्ति के साथ एक शर्त लगा देते हैं और यही शर्त उस भक्ति को परिपूर्ण करती है। जैसे—पहली भक्ति है—संतों का सत्संग। दूसरी भक्ति है—मेरे कथा-प्रसंग में रति अर्थात् प्रेम। तीसरी भक्ति है—अभिमानरहित होकर गुरु के चरणकमलों की सेवा और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुणसमूहों का गान करे।

मेरे मंत्र का जाप और मुझमें दृढ़ विश्वास—यह पाँचवीं भक्ति है, जो वेदों में प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है—इंद्रियों का निग्रह, शील, बहुत कार्यों से वैराग्य और निरंतर संत पुरुषों के साथ लगे रहना। सातवीं भक्ति है—जगत् भर को समभाव से मुझमें ओत-प्रोत देखना और संतों को मुझसे भी अधिक करके मानना।

आठवीं भक्ति है—जो कुछ मिल जाए, उसी में संतोष करना और स्वप्न में भी पराये दोषों को न देखना। नवीं भक्ति है—सरलता और सबके साथ कपटरहित बरताव करना, हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और दैन्य का भाव न होना।

इस तरह नवधा भक्ति के नौ सोपान योग-साधना व जीवन-साधना के मर्म को अपने में समाये हुए हैं, इन्हें अपनाकर कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत करते हुए भक्ति के आध्यात्मिक स्वरूप की ओर अग्रसर हो सकता है। □

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

उपासना का आधार



परम वंदनीया माताजी के व्याख्यानों की यह विशिष्टता है कि उनकी अमृतवाणी न केवल साधारण व्यक्ति को उसके जीवन को जीने के सूत्रों से परिचित कराती है, वरन साधना के दुष्कर पथ पर बढ़ने वालों को भी साधनात्मक उत्कर्ष का मार्ग दिखाती है। अपने एक ऐसे ही प्रस्तुत उद्बोधन में परमवंदनीया माताजी सभी साधकों को उपासना के वास्तविक आधार से परिचित कराते हुए कहती हैं कि मनुष्य के पास शक्तियों के अपरिमित भंडार हैं, परंतु वे साधना के स्वर्णिम पथ पर बढ़ने से ही हस्तगत हो पाते हैं। वंदनीया माताजी हर साधक को स्मरण दिलाती हैं कि साधना का पथ निरभिमानता का पथ है एवं अपने अभिमान व अहंकार को त्यागने वाले ही साधना से सिद्धि का पथ तय कर पाते हैं। उपासना का वास्तविक आधार अपने आराध्य के प्रति सर्वोच्च समर्पण ही है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....।

शक्तियों के भंडार

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

भगवान की शक्ति अनंत है और उस अनंत भांडागार में से व्यक्ति जितना चाहे, उतना प्राप्त कर सकता है। शर्त इतनी भर है कि उसकी पात्रता का विकास हुआ या नहीं हुआ। सर्वत्र शक्तियों के भांडागार भरे पड़े हैं, लेकिन कहते हैं कि—

सकल पदारथ हैं जग माहीं।

करमहीन नर पावत नाहीं॥

व्यक्ति चाहते हुए भी क्यों पा नहीं पाते हैं? क्योंकि वे प्रयास नहीं करते। प्रयास करें, तो ऐसी कोई भी दुनिया की शक्ति नहीं है, जिसको हम प्राप्त न कर सकें। खासतौर से आध्यात्मिक मार्ग पर हम चाहे जो उपलब्धि प्राप्त कर सकते हैं।

मैं उपासना की महत्ता बताने जा रही हूँ कि जीवन में उसका कितना महत्त्व है। उपासना से व्यक्ति का विकास, किस प्रकार होता हुआ चला जाता है और वह क्या-से-क्या बनता हुआ चला जाता है? वह संत बनता हुआ चला जाता है, ऋषि बनता हुआ चला जाता है और न मालूम जीवन में क्या-क्या अच्छाइयाँ लेकर के आता है और उन अच्छाइयों को दूसरों के अंदर डालता हुआ चला जाता है।

बेटे! कोई एक संत थे, जिन्होंने उपासना की। उपासना की, तो उनको वरदान मिला। वरदान मिला, तो वे वरदान पाकर के कुछ बौखलाने लगे कि जब मेरे अंदर इतनी शक्ति है, तो मैं कुछ भी कर सकता हूँ। एक बार उन्होंने ऊपर को देखा, ऊपर देखते ही चिड़िया जो थी, वह नीचे आ पड़ी और जलकर मर गई। चिड़िया जब मर गई, तो उनके अंदर एक अहंकार आ गया, अहंकार वृत्ति आ गई।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

साधक में न हो अहंकार

साधक के अंदर अहंकार वृत्ति नहीं होनी चाहिए। लोभ और मोह की जंजीरें नहीं होनी चाहिए। उन्होंने उस चिड़िया को देखा, तो कहा कि मेरे अंदर तो इतनी शक्ति है कि जब मैं इस चिड़िया को जला सकता हूँ, तो मनुष्य को तो और भी भून सकता हूँ। भीतर से उनका अहंकार जाग गया। संत के अंदर अहंकार नहीं होना चाहिए। पूजा-उपासना की है, तो अहंकार किस चीज का ?

अब वह आगे बढ़े, तो भिक्षा माँगने के लिए एक व्यक्ति के यहाँ पहुँचे। भीतर उसकी पत्नी बैठी थी। तो उन्होंने कहा—भिक्षा लाओ, तो उसने अंदर से यह कहा कि देखिए मैं अपने पति की सेवा कर रही हूँ, मैं इस समय आपको भिक्षा नहीं दे सकती। थोड़ी देर आप इंतजार करिए, तो मैं आपको भिक्षा दूँगी। थोड़ी देर बैठा, तो तिलमिला गया और बड़ी जोर से कहा कि देती है कि नहीं देती।

उसने कहा—जाओ-जाओ, चिड़िया जला दी होगी, आप मुझे नहीं जला सकते। उन्होंने कहा कि चिड़िया की बात इसको कैसे मालूम पड़ी ? फिर उससे पूछा कि तुम्हें चिड़िया के बारे में कैसे मालूम ? उसने कहा कि देखिए मुझे आत्मज्ञान है; क्योंकि जो भी मेरा कार्य है, उसे मैं भगवान की पूजा समझ करके ही करती हूँ। जो मेरा दैनिक कृत्य है, उस हर कार्य में भगवान समाया हुआ है। चाहे घर की सफाई हो, चाहे घर का कोई भी कार्य हो, चाहे मेरे पति की सेवा हो और चाहे जो भी हो, मेरे लिए भगवान की पूजा है। इसलिए मुझे आत्मज्ञान है कि आप मुझे नहीं जला सकते।

उन्होंने कहा—इसका रहस्य बताओ ? रहस्य जानने के लिए, फिर कहा कि इसके लिए आप तुलाधार वैश्य के यहाँ जाइए। तुलाधार वैश्य के यहाँ पहुँचे, तो उन्होंने भी यही जवाब दिया।

उन्होंने कहा—देखिए आपको यहाँ उस महिला ने भेजा है। उन्होंने कहा कि तुम्हें कैसे मालूम ? उन्होंने कहा—देखिए हम कर्म करते हैं और कर्म में ही हम भगवान के दर्शन करते हैं। जो भी ग्राहक हमारे यहाँ आता है, उसको हम यह मानकर चलते हैं कि भगवान का राजकुमार है और भगवान का राजकुमार है, तो इसको हम धोखा क्यों देंगे ? इसको मिलावट की चीजें क्यों देंगे ? हम बराबर अपनी ईमानदारी से पेश आते हैं और सभी कार्यो को हम इस तरीके से करते हैं कि जितने घंटे हमें

ज्ञानहृदे ध्यानजले रागद्वेषमलापहे ।

यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ॥

—गरुड़ पुराण

अर्थात् जो ज्ञानरूपी तालाब वाले, ध्यानरूपी जल वाले मन के तीर्थ में स्नान करके राग-द्वेष रूपी मल को दूर कर लेता है, वह परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होता है।

काम करने हैं, वह पूरा अपना मुआवजा चुका लेते हैं, अपने शरीर को निचोड़ देते हैं। हम इतना काम करते हैं और उसमें हमें सफलता मिलती है; क्योंकि हम हर व्यक्ति को भगवान का स्वरूप मानते हैं।

फिर उन्होंने कहा कि अब आप चांडाल के यहाँ चले जाइए। चांडाल के यहाँ गया। चांडाल के यहाँ पहुँचा, तो चांडाल ने भी यही कहा कि अभी आप बैठ जाइए। आपको तुलाधार वैश्य ने भेजा है, मैं पूरा रहस्य आपको समझा दूँगा, आप बैठ जाइए।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

उन्होंने कहा कि तुम्हें कैसे मालूम पड़ा कि तुलाधार वैश्य ने भेजा है।

उन्होंने सारा काम किया और सारा काम करके घर में उनके बुजुर्ग माता-पिता थे, उनकी उन्होंने सेवा की और सेवा के पश्चात फिर उन्होंने बताया। उन्होंने बताया कि देखिए जो हम कर्म कर रहे हैं और जो हमारा कार्य है, आपने देखा कि जितनी देर हम मैला उठाते रहे, झाड़ू लगाते रहे; लेकिन क्या मजाल कि उसमें हमारी तल्लीनता न रहे। हमने ऐसे ही तल्लीनता के साथ अपने कार्य को किया। हमारा हर कार्य पूजा है, उपासना है। उसी से हमको इतना आत्मज्ञान मिला हुआ है कि हमने आपको यह बताया कि वैश्य ने आपको भेजा है।

आत्मज्ञान की उपासना

उन्होंने कहा कि जरा-से व्यक्ति को इतना ज्ञान है और हमें ज्ञान नहीं है, क्यों नहीं है? उसने कहा कि तुम्हें ज्ञान इसलिए नहीं है कि तुम्हारे अंदर अहंकार की वृत्ति ज्यादा हो गई है। आपने तपश्चर्या तो जरूर की है, लेकिन तपस्या का मर्म नहीं पहचाना। इतने दिन खराब भी किए, आपने उपासना भी की और फिर भी आप वैसे-के-वैसे ही रह गए।

ये कौन-सी उपासना है? उपासना कहती है कि हम भगवान की उपासना करते हैं, तो हमारे मन की मलिनताएँ दूर हों, जो हमारी दुष्ट प्रवृत्ति है, उस प्रवृत्ति को हम त्यागें और अच्छाइयों को ग्रहण करें, लेकिन हम बुराइयों को इस कदर (तरह) चिपकाए रहते हैं, जिस तरीके से नदी में कंबल बह रहा था और एक ने उसे पकड़ लिया। उन्होंने कहा—छुड़ाओ। क्यों, क्या बात है? अरे! यह रीछ नहीं छोड़ रहा है। उन्होंने कहा—ये रीछ नहीं, ये तो कंबल है। अरे! तुने तो इसे पकड़ रखा

है, कंबल को तू छोड़ दे, फिर देख छोड़ता है कि नहीं छोड़ता।

हमारे अंदर की जो क्षुद्रताएँ हैं, उनको हम नहीं त्यागते, उनको हम पकड़े रहते हैं। माया-मोह की जंजीरों से लेकर के अहंकार तक हमारे ऊपर इस तरीके से छाया हुआ है कि हमें न उपासना करने देता है, न हमें जनजागरण के कोई अच्छे काम करने देता है।

हमारे अंदर अहंकार इतना समाया हुआ है कि हमें कुछ नहीं करने देता है, खासतौर से उपासना में तो कहीं भी नहीं, कोई स्थान अहंकार का नहीं है। उसमें तो नम्रता होती है। व्यक्ति जितना नम्र होगा, उतना ही पाएगा।

आंतरिक पवित्रता है उपासना

उपासना में आंतरिक पवित्रता! बहुत जरूरी है। यदि आंतरिक पवित्रता नहीं है, तो कूड़े के ढेर पर आखिर क्या पाएँगे? कूड़े के ढेर पर कोई नहीं आएगा, सफाई कीजिए। जब कहीं घर पर कोई आता है, तो हम घर की सफाई करते हैं। हमारे यहाँ कोई मंत्री आने वाला है, हमारे यहाँ कोई रिश्तेदार आने वाला है, तो उसके लिए हम सफाई करते हैं। तो फिर यह बताइए कि उस परब्रह्म को हम किस तरीके से पाएँ? गायत्री माता को किस तरीके से पाएँ?

जब तक हमने अपनी आंतरिक मलिनताओं को दूर नहीं किया है और अपने अंदर हमने झाड़ू नहीं लगाई है, सफाई नहीं की है, तो फिर बताइए गायत्री माता कैसे आएँगी ? गायत्री माता तो नहीं आएँगी । फिर क्या आएगा ? छलावा आएगा । जो अपनी आत्मतुष्टि के लिए माला तो फेर रहे हैं, आप चौबीस हजार का अनुष्ठान तो कर रहे हैं; लेकिन उस अनुष्ठान में जो भावनाएँ होनी चाहिए, जो श्रद्धा होनी चाहिए, वह श्रद्धा न होकर के एक छलावा मात्र हो जाता है ।

कर का 'मनका' छोड़कर मन का 'मनका' फेर

जब हम माला के साथ में अपने मन का 'मनका' नहीं फेरते—“कर का 'मनका' छोड़कर मन का 'मनका' फेर” कर का मनका हाथ में रह जाता है, मन का मनका न जाने कहाँ घूमता रहता है, अर्थात् किधर चलता रहता है, किधर जाता रहता है? क्या? हमने कभी अपने बारे में विचार किया? अपने बारे में विचार नहीं किया। न हमने अपनी श्रद्धा को इस लायक बनाया कि हमारी श्रद्धा पल्लवित हो, फले-फूले और विकसित हो; ताकि इस श्रद्धा के बल पर हम जो भी चाहें, भगवान से माँग सकते हैं।

दीजिए और लीजिए

हमारा अधिकार भगवान पर है और भगवान का अधिकार हमारे ऊपर है। यदि आप माँगते ही चले गए और भगवान को देना नहीं सीखा, न श्रद्धा दी है न आपने भावनाएँ दी हैं, बस, लाइए भगवान जी। जहाँ कहीं चले जाइए, वहीं से लाओ, संतोषी माता से लाओ, चंडी माता से लाओ, भैरव से लाओ, सबसे लाओ, पर हम कुछ भी नहीं दें। हनुमान जी हमें दे जाओ, शंकर जी हमें दे जाओ, सब दे जाओ, तो फिर आप क्या देंगे? आप भी कुछ देंगे, की नहीं देंगे।

आप दीजिए, पहले आप दीजिए और फिर लीजिए। आप शक्ति लीजिए, विवेकानंद जैसी आप शक्ति पाइए, अर्जुन की जैसी आप शक्ति पाइए। निवेदिता की जैसी शक्ति पाइए। निवेदिता कौन थी? निवेदिता एक विदेशी महिला थी और विवेकानंद के साथ वह जुड़ गई। जुड़ गई, तो वह भारत आ गई। भारत आकर के उसने नारी जागरण का बहुत कार्य किया है। वह विदेशी महिला घर-घर घूमी।

आश्चर्य की बात है कि हमारे देश की जो महिलाएँ हैं, उनका शोषण किया गया और उनको दबाया गया। उनको ऊँचा नहीं उठाया गया, वे जहाँ-की-तहाँ बनी रहीं। न उनको उपासना करने दी गई और न ही साधना करने दी गई। उपासना करने दी तो महिलाओं के साथ जाने क्या हो जाएगा? अरे क्या तो सभी के साथ होता है और कौन ऐसा है, जो साथ-साथ जाता है? साथ कोई नहीं जाता है, कभी कोई जाता है, कभी कोई जाता

तपस्वी से राहगीर ने पूछा—

“आप इस बियावान में अकेले रहते हैं, आपको भय नहीं लगता?”

तपस्वी ने उत्तर दिया—“जो श्रेष्ठ विचारों से घिरे हैं, अपने लक्ष्य के प्रति एकाग्र हैं और ईश्वर के चिंतन में निमग्न हैं, वे भला कब और कैसे एकाकी हो सकते हैं? उनके साथ उनके प्रभु परमेश्वर सदा ही रहते हैं।”

है, जिसका नंबर आता है, वह जाता है और जिसका नंबर नहीं आता है, वह नहीं जाता है।

उपासना नहीं करेंगे, तो हमारे साथ में कभी कुछ नहीं होगा। होना होगा, तो होकर के रहेगा। जो प्रारब्ध भोग है, वह तो होंगे-ही-होंगे, उसे कोई रोक नहीं सकता है। सहायता आपको मिल सकती है। यदि आपके प्रारब्ध में है, तो आपको सहायता तो मिल सकती है; लेकिन प्रारब्ध बिलकुल साफ हो जाए, कोई भी दिक्कत न हो, तो ऐसा मनुष्य जीवन कहाँ है?

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

प्रारब्ध सबको भोगने हैं

मनुष्य योनि में जन्म लिया है, तो मनुष्य जैसे सारे-के-सारे क्रियाकलाप करने पड़ते हैं और जो भी प्रारब्धजन्य भोग हैं, वे भी भोगने पड़ते हैं। कृष्ण की बहन थी—सुभद्रा, उसका पुत्र अभिमन्यु मारा गया और उसने कहा कि कृष्ण तू तो मेरा भाई है, फिर ऐसा कैसे हो गया? तो उन्होंने कहा कि भाई तो मैं जरूर हूँ और भगवान भी हूँ, पर देखो जिस तीर से मैंने बाली को मारा था, वह तीर अभी तक रखा है और वह मेरे को लगेगा और मैं मारा जाऊँगा। मुझे गांधारी का शाप लगा था।

उसने यह कहा था कि तुम्हारे सारे-के-सारे कुल का नाश हो जाए, जैसे मेरा हो गया, वैसे ही तेरा हो जाएगा। एक सती नारी की जो बददुआ थी, वह मैंने स्वीकार की; क्योंकि मैंने भूल की थी, मैंने गलती की थी और मैंने छलावा किया था। उसने मुझे शाप दे दिया।

किसी ने दुर्योधन से कह दिया कि तू अपनी माँ के सामने जा। तेरी माँ तो सती-साध्वी है, एक बार वह आँख से पट्टी खोल देगी और तेरे शरीर पर नजर डाल देगी, तो तेरा शरीर पत्थर का हो जाएगा, जिस पर कोई प्रहार नहीं कर सकता, पर जब वह नंगा हो गया, तो कृष्ण ने कहा—भले आदमी! तुझे शरम नहीं आएगी। इतना बड़ा हो गया, अब माँ के सामने तू नंगा जाएगा, लँगोट पहन और उसने लँगोट पहन लिया।

कहते हैं कि वही स्थान कच्चा रह गया और वहीं भीम की गदा पड़ी। श्रीकृष्ण को जब मालूम पड़ा कि वह नहीं मारा जा रहा है, तो उन्होंने बताया कि उसका एक स्थान कच्चा है, जहाँ इसकी माँ की नजर नहीं पड़ी थी, उस स्थान पर आप गदा मारेंगे, तो यह मर जाएगा और वही हुआ। जो भी प्रारब्धजन्य भोग हैं, हमको उन्हें भोगना चाहिए। इससे हम क्यों कतराएँ?

अच्छ है कि हम खुशियों में रह सकते हैं, लेकिन अगर खुशी नहीं है, तो फिर सारी जिंदगी रोकर के बिताने से क्या फायदा? फिर तो हमें वह काम करना चाहिए, जो हमें अच्छा लगता था। जो काम करते थे, उन कार्यों में हम आगे बढ़ें। हमें प्रेम था, तो क्या केवल शरीर के लिए प्रेम होता है? नहीं, आत्मा के लिए भी प्रेम होता है। जब आत्मा के लिए प्रेम होता है, तो मनुष्य ऊँचा उठता हुआ चला जाता है और फिर वह जन्मों तक इंतजार करता हुआ चला जाता है कि चाहे कितने भी जन्म हमें क्यों न लेने पड़ें, लेकिन शर्त एक ही है कि हमारी जो श्रद्धा है, हमारी जो निष्ठा है, वह डिगने न पाए। उपासना यही है।

जब हम उपासना करते हैं, तो हमारी जो इच्छाएँ हैं, उस इच्छाशक्ति का हमें दमन करना पड़ता है और भगवान के जो अनुदान, वरदान हैं, वे हमें प्राप्त होते हुए चले जाते हैं। समर्पण के बगैर हमको भगवान की प्राप्ति नहीं होती। नारी का जीवन ऐसा ही है। एक माने में उसको देवी कहें, तपस्विनी कहें, हाँ बेटा! तपस्विनी कहना पड़ेगा। उसको त्यागी कहना पड़ेगा।

क्यों कहना पड़ेगा कि पिता का घर छोड़कर के जब वह आती है, तो अपने पति को ही सर्वस्व मानती है। उसी के घर को अपना घर मानती है और जैसे वह चलाता है, उसी मार्ग पर चलती हुई चली जाती है। जैसा भी उसके पल्ले पड़ जाता है, आजीवन उसके साथ जीवन व्यतीत करती चली जाती है। नारी यदि उद्दंड हो, तो नर नहीं सहन कर सकता है, लेकिन नारी ही तो सहन करती है।

ये ही गुरु

स्वामी श्रद्धानंद थे। पहले उनका नाम था—मुंशीराम। शुरु में वे बहुत ज्यादा बिगड़ैल थे, शराब भी पीते थे, वेश्यागमन भी करते थे। एक दिन

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

शराब ज्यादा पीकर के आए और अपनी पत्नी के ऊपर उन्होंने उलटी कर दी। वह तो धुत्त थे, उसने नहला-धुला करके, साफ करके चारपाई पर सुला दिया। दूसरे दिन सवेरा हुआ, उनकी आँख खुली, कुछ खाने को लाई।

उन्होंने कहा कि यह आटा कैसे मल रखा है? अभी रोटी नहीं बनी क्या? उसने कहा कि नहीं, रोटी नहीं बनी। उन्होंने कहा, तो फिर तुमने क्या खाया? उसने कहा कि देखो मैंने आपको अपना भगवान समझा है और मैं जब तक भगवान का भोग न लगा लूँ, तब तक मैं कैसे खा सकती हूँ? मैंने नहीं खाया। तो उनकी आत्मा चीत्कार करने लगी।

उन्होंने कहा कि तुम्हें हमारे ऊपर कभी घृणा नहीं हुई, नफरत नहीं हुई। उसने कहा कि नहीं, आपसे नहीं हुई, आपके जो दुर्गुण हैं, उनसे तो हुई; लेकिन आपसे नहीं हुई। आप तो मेरे देवता हैं, आप तो मेरे भगवान हैं, अपने भगवान के प्रति मैं कैसे इतना दुस्साहस कर सकती हूँ, तो वह रोने लगे।

स्वामी श्रद्धानंद ने अपनी जीवनी में लिखा है कि मेरी गुरु, मेरी पत्नी है। यदि उसने इतना धैर्य नहीं किया होता, तो आज मैं नालियों में पड़ा होता, सड़ रहा होता; लेकिन मैं स्वामी श्रद्धानंद बन गया। वह पत्नी के द्वारा बने और वह बनाती हुई चली गई और वह बनते हुए चले गए। उन्होंने आर्यसमाज का गजब का काम किया है। वह ढेरों पत्र-पत्रिकाओं के संपादक रहे और अंत में उनको गोली मार दी गई थी। उनका प्राणांत हो गया, लेकिन जब तक वे जिए, उन्होंने बहुत काम किया। बेटे! मैं समर्पण की बात कह रही हूँ। यह समर्पण सभी के लिए है। यह केवल नारियों के लिए नहीं है, नर के लिए भी है।

अभी यह बात आपको मैंने उपासना के संदर्भ में सुनाई है कि समर्पण एक सती महिला के तरीके से होता है, जो कि अपना सर्वस्व छोड़ करके आती है। भगवान न करें कभी उसका भी बिछोह हो जाए, तो सारी संपत्ति की मालिक हो जाती है। कौन पत्नी नहीं हो जाती है तो क्या वेश्या हो जाएगी? नहीं हो सकती है।

वेश्या के अंदर एक लालच है, एक स्वार्थ है। वह कहती है कि लाओ-लाओ, जैसे कि आप कहते हैं न संतोषी माता से कि लाओ, मनसा देवी तुम भी लाओ, चंडी देवी तुम भी लाओ, भैरव जी तुम भी लाओ, शंकर जी तुम भी लाओ, हनुमान जी तुम भी लाओ, तुम भी एक बच्चा दे जाओ। हनुमान जी के बच्चे तो हैं नहीं, तुझे कहाँ से बच्चा दे जाएँ? वे तो बाल ब्रह्मचारी हैं, तो फिर वे कहाँ से लाएँगे?

शृंगी ऋषि के बारे में नहीं सुना। नहीं सुना है, तो मैं तुम्हें सुनाती हूँ। शृंगी ऋषि, वे एक ऋषि थे, जिन्होंने दशरथ जी के यहाँ पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था। दशरथ जी ने कहा कि मेरे बच्चे नहीं हैं, तो कौन ऐसा है? उन्होंने वसिष्ठ जी से कहा, तो वसिष्ठ जी ने यह कहा कि देखो भाई, मेरे तो सौ बच्चे हैं, मैं इस योग्य नहीं हूँ कि मैं आपको इतना वरदान दे सकूँ। तुम्हें एक व्यक्ति दे सकता है—शृंगी ऋषि।

शृंगी ऋषि कौन है? शृंगी ऋषि वह है, जो महिलाओं को जानता भी नहीं है। समझता भी नहीं है। उन्होंने कहा कि एक जंगल में शृंगी ऋषि रहते थे, वहाँ महिलाएँ पहुँच गईं। कोई विनोद करने लगे। रसगुल्ला रखा था। तो उन्होंने कहा कि यह क्या चीज है? उन्होंने कहा— साहब! यह बड़े मीठे फल हैं। यह फल कहाँ लगते हैं? उन्होंने कहा— पेड़ पर लगते हैं। रसगुल्ला कहीं पेड़ पर लगता है? पेड़ पर नहीं लगता, लेकिन उसने यही समझा कि

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

ये पेड़ पर लगते हैं। उन्होंने कहा कि बड़ा अच्छा
मीठा फल है।

शृंगी ऋषि अपने गुरु के पास गए और अपने
गुरु से यह कहा कि हे गुरुदेव! आज तो महिलाएँ
मिलीं। महिलाएँ नहीं, ऐसे साधक मिले, ऐसे तपस्वी
मिले कि मैंने उनसे कहा कि यह बताओ की
तुम्हारा जो सीना है, ऐसा कैसे है? तो उन्होंने कहा
कि हम लोग दंड पेलते हैं, खूब व्यायाम करते हैं,
इसलिए हमारे सीने बड़े हैं।

गुरु ने सब बातें सुनीं। उन्होंने कहा कि अरे!
यह दुष्ट मेरे लड़के को बहका देंगी। उन्होंने उनसे
तो कुछ नहीं कहा; लेकिन शृंगी ऋषि से कहा कि
बेटा! अब तुम उधर को मत जाना, फँस जाएगा।
तू तो जानता ही नहीं है। जो यह भी नहीं जानता कि
औरत क्या है, मर्द क्या है, इतना फरक नहीं समझता
है, वह ऋषि हो सकता है। उन्होंने कहा कि उसी के
द्वारा किया गया यज्ञ फलेगा। उसी के द्वारा उन्होंने
यज्ञ कराया।

शृंगी ऋषि के द्वारा कराए गए यज्ञ से दशरथ
जी के चार पुत्र पैदा हुए—राम, लक्ष्मण, भरत और
शत्रुघ्न। चारों ही एक से बढ़िया, एक क्वालिटी
वाले पुत्र थे। भगवान तो पीछे बने हैं, पर जब बच्चे
रहे, तो वे क्वालिटी के बने रहे। फिर विश्वामित्र
आए और उन्होंने कहा कि अपने ही लालच के
लिए ये बच्चे रहेंगे? अरे भले आदमी! बुढ़ापे में
पैदा हुए हैं, तो क्या? इनके अंदर प्रतिभा है।

इन दो बच्चों को मुझे दे दो। कौन-से दो
बच्चे? राम और लक्ष्मण को मुझे दे दो। मुझे
इनकी बहुत आवश्यकता है। उन्होंने राम और लक्ष्मण
दोनों को उनके हवाले कर दिया। एक संकीर्ण मन
ने कहा कि अच्छे काम के लिए हम क्यों दे दें? हमें
क्यों देना चाहिए? बच्चे हमारे हैं, लेकिन दूसरा जो
हृदय था, उदार था। उन्होंने कहा नहीं, संत की सेवा

के लिए हम दे रहे हैं। इसमें कुछ अच्छा ही होगा
और उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

का चुप साधि रहेहु बलवाना

विश्वामित्र दोनों बच्चों को जब ले गए, तो
उन्होंने उनको भगवान बना करके भेजा। विश्वामित्र
ने बला और अतिबला दोनों ही शक्तियाँ राम को
दे डालीं और उन्होंने राम को भगवान बना करके
भेज दिया।

ऐसा पराक्रम, ऐसा शौर्य उनके अंदर भर
दिया, ऐसी भावना भर दी और रामराज्य लाने में
सक्षम हुए, अन्यथा वह रामराज्य नहीं ला सकते
थे। यदि विश्वामित्र के संरक्षण में नहीं रहे होते, तो
रामराज्य नहीं ला सकते थे; लेकिन रामराज्य लाने
में समर्थ हो गए।

उसी तरीके से हनुमान जी थे। हनुमान जी में
कोई शक्ति नहीं थी; लेकिन जामवंत ने एक बार
ललकारा और ललकार के यह कहा कि तू अपनी
शक्ति को नहीं पहचानता। तू तो भगवान से जुड़
चुका है और भगवान में इतनी शक्ति है कि तुझे
जाने क्या-से-क्या बना डालें। उस शक्ति को और
अपने को पहचान और हनुमान ने अपनी शक्ति को
पहचाना। सीता की खोज के लिए राम ने हनुमान
जी को भेजा था और हनुमान जी ने जाकर के लंका
दहन किया, सीता की सुध लेकर के आए, प्रमाण
दिया। यह सारा-का-सारा कार्य करने में वह सक्षम
हो गए।

जब विभीषण आए, तो विभीषण को उन्होंने
लंकापति कह करके संबोधित किया; जबकि
वे राजा नहीं थे। वे तो भाई के द्वारा ठुकराए हुए
थे, लेकिन भगवान राम के पास जब वे पहुँचे,
तो उन्होंने उन्हें अपना लिया, क्योंकि उनका
अंतःकरण जो था, वह संत जैसा था। वे उपासना
करते थे।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

लंका में कहीं भी राम का नाम नहीं पाया गया; लेकिन उनकी कुटिया के ऊपर राम का नाम लिखा हुआ पाया गया। हनुमान ने कहा कि बस, यही एक संत हो सकता है और भगवान राम ने उनको लंकापति कह करके पुकारा। उनने कहा कि आप यह क्या कह रहे हैं? उन्होंने कहा कि जो कह दिया—सो कह दिया और तुम लंकापति ही होगे, तुम्हारा राज्याभिषेक हम करेंगे। उन्होंने वहीं से मिट्टी लेकर के उनका राज्याभिषेक कर दिया। उन्होंने कहा कि आगे चल करके लंका के राजा तुम्हीं होगे।

माताजी! आप यह क्या बात कह रही हैं? फिर तो हम भी सब राजा बनेंगे। बनेंगे, पर उसके लायक आप की क्षमता है कि नहीं है, आपके अंदर वह श्रद्धा और निष्ठा है कि नहीं। वह तो सारा राजपाट त्याग करके, छोड़कर के, उसको ठोकर मारकर के चला आया। आपके अंदर इतना साहस है या नहीं है। आप तो डाल-डाल और पात-पात पर घूमने वालों में से हैं, चाहे जहाँ कहीं भी चले जाओ।

एक बार गुजरात जाने का हुआ, तो मैंने कुछ नहीं देखा। हाँ, एक चीज मैंने जरूर पाई

कि जो भी, जितनी भी चौकियों पर भगवान धरे हैं, धरे होंगे बीसियों भगवान, उनमें सब पर सिंदूर लगा हुआ था। किसी का भी मुँह नहीं दिखाई पड़ता था। सारी चौकियों में भानुमती का कुनबा बैठाल रखा है। सबका मुँह पोतकर रख दिया। मैंने यह नहीं देखा कि यह अमीर है या कोई गरीब है, गरीब-अमीर से क्या लेना देना है? हमें तो इसकी श्रद्धा को देखना है, परखना है।

मैंने देखा कि इनको तो कुछ नहीं मिलेगा; क्योंकि वे डाल-डाल और पात-पात पर घूम रहे हैं और हर चौकी पर रखे भगवान जी का मुँह पोतकर लाल-पीला कर दिया। जिससे कोई नहीं दिखेगा। न गुरुजी दिखेंगे, न माताजी दिखेंगी, सब लाल-लाल पोत-पात करके रख लिए हैं। मैंने कहा—इसको क्या मिलेगा? सब बेकार है, छलावा है। इसको कुछ नहीं मिलेगा। क्यों नहीं मिलेगा? “एकहि साधे सब सधे और सब साधे सब जाय।” सबको साधने में सब चला जाएगा और एक को साधेंगे, एक का पल्ला पकड़ेंगे, तो वही फलीभूत होगा।

[क्रमशः अगले अंक में समापन]

एक प्रसिद्ध संत का स्वभाव था कि वे परोपकार या लोकहित के उद्देश्य से लोगों की परीक्षा लेते रहते थे। एक बार वे देशाटन पर निकले तो उन्हें मार्ग में एक चरवाहा मिला। संत ने उससे एक बकरी देने को कहा। चरवाहे ने अपने मालिक का हवाला देकर ऐसा करने में असमर्थता जताई। तब संत ने उससे कहा—“इतनी बकरियाँ हैं। इनमें से एक कम भी हो जाएगी तो तुम्हारे मालिक को पता थोड़े ही चलेगा। वैसे भी तुम्हारा मालिक तो यहाँ है नहीं।”

चरवाहा बोला—“मेरा मालिक तो नहीं देख रहा, पर सबका मालिक ईश्वर तो देख ही रहा है। उसके साथ धोखा कैसे कर सकता हूँ?” संत उसको लेकर उसके मालिक के पास पहुँचे और उसे सारा किस्सा कह सुनाया। वह चरवाहा उस व्यक्ति के यहाँ नौकर के रूप में कार्यरत था। संत ने मालिक से कहा—“ईश्वर के भक्त को कौन नौकरी पर रख सकता है? तुम इसे मेरे साथ आने दो।” चरवाहे के मालिक ने उसे आजाद कर दिया और वह चरवाहा एक संत के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◀

अंतरिक्ष में प्रकाश का आगमन



अंतरिक्ष में प्रकाश का आगमन धरती को जीवन का वरदान देने में सक्षम है। इसकी व्यापक व्यापकता में सूक्ष्मजगत् एवं बाह्यजगत्, दोनों समाये हैं। धरती पर प्राण व प्रकाश यहीं से बरसता है। इसमें फैले आसुरी अँधियारे ने, यहाँ फैली—विकृतियों व विसंगतियों ने समूची धरती को विकृति के विष से भर रखा है। यदि किसी तरह से इस विष का समापन हो सके, तो धरती स्वतः ही विषमुक्त हो जाएगी।

यह आध्यात्मिकता का ऋषिसत्य है। वैज्ञानिक अभी इसे ठीक से समझ नहीं पाए हैं। ऋषिगणों ने इसे समझकर धरती व अंतरिक्ष की पारस्परिक घनिष्ठता को जानकर यहाँ शांति की कामना से शांति मंत्र कहे थे—‘ॐ द्यौः शांतिरन्तरिक्षं शांतिः। पृथिवी शांतिरापः शांतिरोषधयः शांतिः। वनस्पतयः शांतिर्विश्वेदेवाः शांतिर्ब्रह्म शांतिः सर्वं शांतिः शांतिरेव शांतिः सा मा शांतिरेधि ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥’

ऋषियों द्वारा गाया गया यह शांति मंत्र हम सबने भी अनेकों तरह से सुना और गाया होगा, परंतु अभी भी इसे और अधिक समझने की आवश्यकता है। इस शांति प्रार्थना में ऋषिगणों के स्वर हैं—धरती पर जीवन का प्रत्येक घटक शांति और जीवन से परिपूर्ण हो। इसके लिए सबसे पहले आवश्यक द्युलोक एवं अंतरिक्ष में सुव्यवस्था हो, शांति हो।

उनका कहना है—पहले देवता शांत और अपने कर्तव्यपालन में तत्पर होंगे, तो धरती पर जीवन स्वतः ही शांत व सुव्यवस्थित हो जाएगा। निरुक्तकार

यास्क ने देवों को तीन वर्गों में बाँटा है—(1) पृथ्वी स्थानीय, (2) अंतरिक्ष स्थानीय एवं (3) द्युस्थानीय। इनके प्रमुख देव कुछ इस तरह से हैं—(1) पृथ्वी स्थानीय देवता—अग्नि, सोम, प्रजापति, विश्वकर्मा, अदिति आदि देवियाँ, नदियाँ आदि। (2) अंतरिक्ष स्थानीय देवता—इंद्र, मातरिश्वा, रुद्र, मरुत्, पर्जन्य, आपः, अहिर्बुध्न्य आदि। (3) द्युस्थानीय देवता—आदित्य, सविता, पूषा, अर्यमा आदि।

अंतरिक्ष में सूक्ष्मजगत् एवं बाह्यजगत् दोनों समाये हैं। धरती पर प्राण व प्रकाश यहीं से बरसता है। इसमें फैले आसुरी अँधियारे ने, यहाँ फैली—विकृतियों व विसंगतियों ने समूची धरती को विकृति के विष से भर रखा है। यदि किसी तरह से इस विष का समापन हो सके, तो धरती स्वतः ही विषमुक्त हो जाएगी।

वैदिक देवों के इस स्थान विवरण से यह बड़ा स्पष्ट है कि धरती और अंतरिक्ष किस तरह सघनता से संबंधित हैं। तभी तो ऋषि का अपने प्रार्थना मंत्र में कहना है—हे परमात्मन्! सबसे पहले द्यौः एवं अंतरिक्ष शांत हों। फिर उनकी यह शांति समूची धरती पर फैले। धरती शांत हो, जल में शांति का प्रसार हो। सभी जड़ी-बूटियों, औषधियों में, वृक्षों-वनस्पतियों में, लताओं में शांति स्थापित हो। सभी विश्वेदेवा शांत हों, समूचे ब्रह्मांड में शांति हो।

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◀

हम सभी इस शांति का अनुभव कर सकें। सभी शांति में और शांति में ही जीवन जी सकें। हम सबके सब भौतिक शांति, दैविक शांति एवं आध्यात्मिक शांति प्राप्त करें। यहाँ पर भौतिक शांति का अर्थ है—स्वस्थ जीवन, दैविक शांति का अर्थ—मानसिक सुख और संतोष से है, जबकि आध्यात्मिक शांति का संबंध ईश्वरीय ज्ञान एवं सर्वत्र प्रेम से उपजे आनंद से है। सतयुग की यह स्वर्णिम संस्थापना अब अदृश्य है।

हालाँकि अंतरिक्ष के बारे में जितना ऋषियों ने विचार किया; उतना ही विचार, दर्शन में भी हुआ है। भारतीय दर्शन की विविध शाखाओं के साथ पश्चिमी दर्शन ने भी इस पर व्यापक विचार किया है। गोट फ्राइड लेबिनत्ज़, इमानुएल काण्ट आदि इनमें से मुख्य हैं। इन सभी के अलावा अंतरिक्ष के क्षेत्र में वैज्ञानिक सक्रियता भी कम नहीं है।

इयूक्लिड, न्यूटन, हेनरी पॉइन्करे से लेकर आइंस्टीन के सिद्धांतों को आगे बढ़ा रही वैज्ञानिक सक्रियता—सभी इसके लिए सक्रिय हैं। अब तो सभी विकसित एवं विकासशील देशों में अंतरिक्षीय ज्ञान की होड़ मची है। सब अपने-अपने उपग्रह यहाँ स्थापित कर रहे हैं। जिनके नहीं हैं, वे इसके लिए प्रयत्नशील हैं। जिनके हैं, वे और अधिक के लिए कोशिश कर रहे हैं। हाँ, इनके प्रयोजन अवश्य अलग-अलग हैं। किसी का प्रयोजन युद्ध और जासूसी के लिए है; तो कोई मौसम, कृषि आदि प्रयोजनों के लिए क्रियाशील हैं।

कभी पुरातन समय में ऋषियों व देवों ने अंतरिक्ष में नौ ग्रहों, सत्ताईस नक्षत्रों एवं बारह राशियों के माध्यम से धरती को प्राण व प्रकाश भेजने के लिए सुचारु व्यवस्था बनाई थी। उन्होंने मानव शरीर एवं अन्य प्राणियों के शरीर में चक्रों, ग्रंथियों एवं शक्तिकेंद्रों को इस व्यवस्था से जोड़ा

था; ताकि धरती पर जीवन स्वस्थ, सुखी व शांत रह सके। उन्नति, प्रगति की दिशा में गतिशील हो सके, परंतु असुरों व उनके आसुरी उपद्रवों ने प्राण, प्रकाश व जीवन-ऊर्जा के इन केंद्रों को अव्यवस्थित एवं अस्त-व्यस्त किया है। तभी धरती पर जीवन-व्यवस्था लड़खड़ाई एवं गड़बड़ाई है। जीवनचक्र, ऋतुचक्र, कालचक्र सभी इससे प्रभावित हुए हैं। वर्तमान में होने वाली प्राकृतिक आपदाएँ, मौसम में व्यतिक्रम इसी के परिणाम हैं।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी व्यक्तिगत साधना और हममें से प्रत्येक गायत्री परिजन की

पूज्य गुरुदेव ने इस सच को बार-बार कहा है कि इस बार सवाल किसी एक व्यक्ति या एक देश का नहीं है, बल्कि समूची धरती एवं उसमें बसने वाले सभी प्राणियों का है। धरती के भाग्य-भविष्य का है। इस बार प्रतिपक्षी योद्धा कठिन है, समर कठिन है, संघर्ष कठिन है।

साधना की दिशा को इस ओर मोड़ा था। हम सबके सामने उन्होंने सूक्ष्म के परिशोधन के लक्ष्य को बार-बार दोहराया था। हमारी साधना के लिए उन्होंने यही साध्य निश्चित व निर्धारित किया था। जब वे बार-बार अखण्ड ज्योति के पृष्ठों में सूक्ष्म के परिशोधन की बात लिखते थे, तो उनका मतलब यही होता—असुरों व उनके आसुरी आँधियारे को हटाना व मिटाना।

अगर हम उनके प्रवचनों को फिर से एक बार ध्यान से सुनें, उनके लेखों को पुनः पढ़कर इन पर पुनर्विचार करें, तो हमें पता चलेगा कि वे क्यों बार-बार कहते और लिखते थे कि अब रावण और उसके असुर सेनापति किसी एक लंका देश

तक सीमित नहीं हैं। उन्होंने समूचे अंतरिक्ष में अपना डेरा जमा लिया है। अब उनके पास पहले से कहीं अधिक वरदान-विज्ञान व शक्तियाँ हैं। पूज्य गुरुदेव ने इस सच को बार-बार कहा है कि इस बार सवाल किसी एक व्यक्ति या एक देश का नहीं है, बल्कि समूची धरती एवं उसमें बसने वाले सभी प्राणियों का है। धरती के भाग्य-भविष्य का है। इस बार प्रतिपक्षी योद्धा कठिन है, समर कठिन है, संघर्ष कठिन है।

अपनी सूक्ष्मीकरण साधना के क्रम में उन्होंने पाँच वीरभद्र के बल, सामर्थ्य एवं कार्य की बात बताई थी। अपने शरीर छोड़ने से पहले उन्होंने कहा था—अब आगे उनकी साधना और अधिक तीव्र वेग से संपन्न होगी, क्योंकि आगे कहीं अधिक कठिन लक्ष्य साधे जाने हैं। वे अपनी साधना के परिणाम एवं महाबली असुरों पर अंतिम विजय को लेकर सुनिश्चित व आश्वस्त थे। तभी उन्होंने इक्कीसवीं सदी में उज्ज्वल भविष्य का उद्घोष एवं जयघोष किया था।

इस संदर्भ में उन्होंने कहा था—इसके लिए जो करना है, वह सब किया जाएगा। जिन संसाधनों की आवश्यकता है, वे सभी जुटाए जाएँगे। इस कहे और लिखे गए अपने सच को उन्होंने अपनी निजी वार्ताओं में और अधिक स्पष्ट व प्रकट किया था। उन्होंने इस बारे में कहा था कि बात ऐसे नहीं बनेगी।

वे बोले थे कि इसके लिए अंतरिक्ष में एक नहीं, अनेक अनुसंधान केंद्र स्थापित करने होंगे। इनमें ब्रह्मर्षिगणों की सहायता से किए जाने वाले शोध-अनुसंधानों के माध्यम से असुरों की विद्याओं व विज्ञान की काट ढूँढ़ी जाएगी। अपने एक सूक्ष्म शरीर के द्वारा मैं स्वयं इस अनुसंधान कार्य का नियंत्रण एवं निर्देशन करूँगा।

अंतरिक्ष में स्थापित इन सभी अनुसंधान केंद्रों में होने वाले शोध, अनुसंधान कार्य के तीन महत्वपूर्ण उद्देश्य होंगे—(1) असुरों के पास जो भी विद्या-विज्ञान है, उसकी सक्षम काट तैयार करना। (2) उन्होंने अपने प्राप्त वरदानों एवं अस्त्र-शस्त्रों के माध्यम से अंतरिक्ष के जिन प्राणकेंद्रों व प्रकाशकेंद्रों में, जीवन-ऊर्जा के स्रोतों में जो कालिख-कालिमा जमा की है, इनमें जो विष घोला है—उसे नष्ट करना, उनके समस्त प्रभाव व प्रभाविकता को समाप्त करना एवं (3) धरती की समस्त मानव

हममें से प्रत्येक को गिरह बाँध रखनी चाहिए कि नवयुग का भवन बन रहा है, वह बनकर रहेगा। स्मरण रखा जाना चाहिए कि अगला समय उज्ज्वल भविष्य के साथ जुड़ा हुआ है। जो इसमें अवरोध बनकर अड़ेंगे, वे मात्र दुर्गति ही सहन करेंगे। विश्वात्मा ने, परमात्मा ने नवसृजन के संकल्प कर लिए हैं, इनके पूर्ण होकर रहने में संदेह नहीं ही किया जाना चाहिए।

जाति को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जो नुकसान हो चुके हैं, जो हो रहे हैं और जो होने वाले हैं—उन सबकी भरपाई करना। ऐसे शोध सूत्रों को तैयार करना, जो फैले हुए तमस् को प्रकाश में, विष को अमृत में एवं मरण को जीवन में बदल सकें।

परमपूज्य गुरुदेव द्वारा किया जाने वाला यह महिमामय कार्य ही धरती की अवस्था एवं व्यवस्था में, दिशा व दशा में प्रकाशयुग का परिवर्तन लाएगा। □

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

गायत्री का संध्यावंदन



संसार क्रियाशीलता का ही दूसरा नाम है। प्रकृति हर क्षण प्रवाहित हो रही है और जीर्णता को हटाती हुई तथा नवीनता को अंगीकार करती हुई अनंत की ओर अग्रसर है। सृष्टि का नियम है कि यहाँ हर प्राणी को, जड़ हो अथवा चैतन्य, हर तत्त्व को, परिवर्तन को स्वीकार करना पड़ता है।

परिवर्तन न हो तो सृष्टि में ठहराव आ जाए और विकास की यात्रा संभव ही न हो सके। परिवर्तन का यही क्रम मनुष्य और इतर प्राणियों को कर्म करने को विवश करता है, यद्यपि कर्म को शुभ अथवा अशुभ करने की स्वतंत्रता मनुष्य के ही हाथों में है।

कुछ कर्म या कार्य ऐसे होते हैं, जिनको नित्यप्रति करना आवश्यक माना जाता है। मल-मूत्र का त्याग, शरीर की सफाई, अन्न-जल को ग्रहण करने जैसे अनेक कार्य ऐसे हैं, जो यदि नित्य न किए जाएँ तो शरीर के संचालन की सारी व्यवस्था बिगड़ने लगे और मनुष्य गंभीर रोगों का शिकार होकर मृत्युशैया को पकड़ ले।

इन नित्य कर्मों का एक ही उद्देश्य है कि अवांछित तत्त्व शरीर से निष्काशित हो जाएँ, ताकि आवश्यक तत्त्वों को उनका निर्धारित स्थान मिल सके। यदि शरीर में से अवांछित पदार्थों को न निकाला जाए तो शरीर दुर्गंध देने लगेगा। मलिनता और विकृतियाँ दूर से ही दिखने लगेंगी और विषैले पदार्थों का उत्सर्जन न हो पाने की स्थिति में शरीर का संतुलन तो बिगड़ेगा ही, नया आहार

ले पाना संभव न होगा और गतिशीलता को बनाए रखने के लिए आहार की आवश्यकता है; क्योंकि जीवन के लिए जरूरी नियामक तत्त्व वहीं से आते हैं।

संसार का हर प्राणी इस सत्य को स्वीकारता है और तभी हर व्यक्ति की सुबह इन नित्य कर्मों को पूर्ण करने में जाती दिखाई पड़ती है, पर आश्चर्य की बात यह है कि मनुष्य जैसा समझदार प्राणी जो इस नश्वर शरीर की मलिनता को हटाने के लिए इतने तरह के प्रयत्न करता है, वो उस शाश्वत आत्मा को भूल जाता है, जिसकी चेतनता ही जीवन का आधार है।

आत्मा का स्वभाव ही मुक्ति है, अतः यदि उसके ऊपर अशुभ कर्मों का, तमस् और अंधकार का, कषाय-कल्मषों का आवरण निरंतर चढ़ता रहे और उसकी सफाई के लिए कोई प्रयत्न न किया जाए तो जीवन में विषादों, विकारों और विकृतियों को पनपने से कोई रोक नहीं सकता। जिस तरह शरीर की सफाई के लिए शौच-स्नान का प्रावधान है, वैसे ही आत्मा की निर्मलता के लिए किया गया नित्य क्रम 'संध्यावंदन' कहलाता है।

यों प्रचलन में तो संध्यावंदन की अनेक विधियाँ हैं, पर इनमें सबसे सरल, प्रभावशाली एवं भावनात्मक रूप से प्रगाढ़ साधना, गायत्री मंत्र द्वारा की जाने वाली ब्रह्मसंध्या ही है। इसका विधि-विधान न केवल सरलतम है, बल्कि अपने प्रभाव में किसी से कम नहीं है।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

शास्त्रों में त्रिकाल संध्या का वर्णन आता है पर यदि 3 बार न बन पड़े तो दिन में 2 बार संध्या पूजन किया जा सकता है। जब रात दिन से मिलती है और दिन रात से मिलता है, ऐसे सूर्योदय और सूर्यास्त के समय को संध्यावंदन कहते हैं, यही समय संध्यावंदन के लिए उपयुक्त है। जो 2 समय भी न कर सकें, वे कम से 1 प्रातःकाल, सूर्योदय के समय संध्यावंदन के क्रम को सुनिश्चित कर ही लें।

नित्यक्रम, शौच-स्नान आदि से निवृत्त होकर संध्यावंदन को बैठना चाहिए। कुशा का आसन इस हेतु श्रेष्ठ माना गया है, पर उसकी अनुपलब्धता में चटाई पर बैठा जा सकता है। बैठते समय पद्मासन लगा लें या कमर सीधी रखते हुए पालथी मारकर बैठें। शरीर पर कम-से-कम वस्त्र हों, पर मौसम के अनुरूप इस व्यवस्था में परिवर्तन कर लेना चाहिए अन्यथा शारीरिक व्याधियों से घिरने की शंका रहती है।

प्रयत्न करें कि घर में एक नियत स्थान हो, जहाँ पूजन-वंदन का ये क्रम नित्यप्रति संपन्न किया जा सके और वहाँ की शांति सामान्य क्रम में अबाधित रहे। इतनी व्यावहारिक व्यवस्था जुटा लेने के उपरांत पंचपात्र में पानी भरकर गायत्री के संध्यावंदन का क्रम आरंभ करना चाहिए।

सर्वप्रथम गायत्री मंत्र का धीमे स्वर में ऐसे उच्चारण करें—‘ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ।’ ऐसा करते समय माँ गायत्री का, सविता देवता का ध्यान रहे और ये भावना रहे कि उनका तेज हमारे शरीर के कण-कण से प्रवाहित हो रहा है।

इसके उपरांत ‘आचमन’ का क्रम आता है। आचमन का उद्देश्य गायत्री-साधना जैसे पवित्रतम कार्य के लिए हमारे अंतःकरण को शुभ भावनाओं

से ओत-प्रोत कर देना है। जिन्हें शांतिकुंज, हरिद्वार द्वारा प्रकाशित ‘कर्मकांड प्रदीप’ में दिए गए आचमन कर्म के मंत्र याद हों वे उन्हें दोहरा सकते हैं अन्यथा अपनी दाईं हथेली में थोड़ा-सा गड़्ढा बनाकर उसमें जल ले लें एवं 3 बार गायत्री मंत्र पूर्ववत् बोलते हुए, ॐ के उच्चारण के साथ पी लें।

आचमन के तीन मंत्रों के साथ माँ गायत्री के त्रिगुणमयी स्वरूप का ध्यान किया जाता है। प्रथम आचमन के साथ माँ के सतोगुणी स्वरूप ‘ह्रीं’ का ध्यान करते हैं, द्वितीय आचमन के साथ माँ के रजोगुणी स्वरूप ‘श्रीं’ का ध्यान करते हैं तथा तृतीय आचमन के साथ माँ के तमोगुणी स्वरूप ‘क्लीं’ का ध्यान किया जाता है। कृत्य लौकिक हो सकता है, पर भावना प्रगाढ़ हो तो जैसे माँ के आँचल में बैठकर पुत्र को सुरक्षा अनुभव होती है, वैसा ही आंतरिक बल त्रिगुणमयी माँ की इन 3 शक्तियों के अंदर प्रवेश करने के साथ प्राप्त होता है।

आचमन के उपरांत दूसरा क्रम ‘शिखावंदन’ का आता है। शिखा मस्तिष्क के उच्चतम बिंदु पर स्थित है। जैसे बिजली के टावरों और मोबाइल के एरियालों के माध्यम से वायुमंडल में बिखरी तरंगों को एक जगह संगृहीत कर लिया जाता है, वैसे ही शिखा के बँध जाने से आंतरिक शक्तियाँ एक स्थान पर एकत्रित हो जाती हैं।

जिन्हें शिखावंदन का मंत्र याद हो वो उसे दोहराते हुए उसमें गाँठ लगा लें अन्यथा गायत्री मंत्र का उच्चारण करते हुए इस क्रम को पूर्ण कर लें। जिन्होंने अभी शिखा धारण नहीं की है, वे मस्तिष्क के मध्यस्थल एवं उच्चतम बिंदु पर दाएँ हाथ की पाँचों उँगलियों को पानी में भिगो कर लगा लें एवं गायत्री मंत्र के उच्चारण के

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◀

पश्चात वहाँ से हटा लें। याद रखें कि मूल स्थान भावनात्मक शुद्धि का है, जैसे-तैसे क्रम संपन्न करने का नहीं।

गायत्री के संध्यावंदन में तीसरा क्रम 'प्राणायाम' का आता है। इस संसार में सारी चेतनता, प्राण तत्त्व के कारण ही है। प्राण जहाँ प्रवाहित होता है, वहाँ आत्मबल, विश्वास, उत्साह, उमंग, उल्लास जैसे अनेकानेक गुण स्वतः प्रवाहित होने लगते हैं अन्यथा इनसान दबू, डरपोक और निस्तेज ही बना रहता है।

प्राणायाम के क्रम में इसी विश्वव्यापी प्राणतत्त्व को अपने अंदर धारण किया जाता है। वायु ही हमारा निकटतम, सर्वव्यापी प्राणतत्त्व है, जिसके अंदर जाते ही, आवश्यक ऑक्सीजन हमारे अंग-अवयवों तक पहुँचती है और जीवन की गति को निर्विरोध प्रवाहित होने देती है।

प्राणायाम के चार अंग हैं—

- (1) पूरक
- (2) अंतःकुंभक
- (3) रेचक
- (4) बाह्यकुंभक।

वायु को भीतर खींचने का नाम पूरक, वायु को भीतर रोके रखने का नाम अंतःकुंभक, वायु को बाहर निकालने का नाम रेचक और बिना दोबारा साँस लिए वायु को बाहर ही रोके रखने का नाम बाह्यकुंभक है। गायत्री मंत्र के 4 भागों को इन 4 अंगों के साथ करने का प्रावधान गायत्री-संध्या वंदन में है।

पूरक के साथ 'ॐ भूर्भुवः स्वः' का मानसिक उच्चारण करते हुए वायु भीतर खींचें, भावना करें कि विश्वव्यापी प्राण जो धरती से लेकर सूर्यलोक तक विद्यमान है, मेरे अंदर प्रवेश कर रहा है।

इसके उपरांत अंतःकुंभक में वायु को भीतर रोके रखें तथा 'तत्सवितुर्वरेण्यं' का मानसिक उच्चारण करें और भावना करें कि सविता देवता द्वारा प्रेरित यह प्राण श्रेष्ठ है, तेजस्वी है और मेरे रोम-रोम में भरता जा रहा है।

इसके बाद रेचक के क्रम में 'भर्गो देवस्य धीमहि' का मन-ही-मन उच्चारण करते हुए, वायु को धीरे-धीरे छोड़ें तथा भावना करें कि यह प्राण मेरे पापों को नष्ट कर रहा है। मुझे सत्यपथ की ओर प्रशस्त कर रहा है।

अंतिम चरण में बाह्यकुंभक की प्रक्रिया है, जिसमें वायु को बाहर रोककर रखें तथा 'धियो यो नः प्रचोदयात्' का मानसिक उच्चारण करते हुए यह भावना करें कि मैं गायत्री मुझे सद्बुद्धि दे रही हूँ, जिससे मैं श्रेष्ठ पथ का अनुगमन कर सकूँ। इन 4 चरणों में प्राणायाम का एक क्रम समाप्त होता है, इसी तरह धीरे-धीरे नित्यक्रम में प्राणायामों की आवृत्ति बढ़ाई भी जा सकती है।

प्राणायाम के पश्चात अघमर्षण का क्रम आता है। अघमर्षण का अर्थ है—पापों का नाश करना। मुख्यमंत्री या राज्य के बड़े पदाधिकारी आते हैं तो उससे पहले इस बात की जाँच-पड़ताल कर ली जाती है कि आमंत्रित जिस स्थान पर किया गया है, वो आमंत्रित अतिथि की गरिमा के अनुकूल है अथवा नहीं।

मैं गायत्री विश्व की माँ हूँ, देवों की माँ हूँ, उनका आगमन भी उसी स्थान पर हो पाना संभव होगा, जो उनकी गरिमा के अनुरूप है। जिस व्यक्ति के चित्त में कलुषता है, अंतःकरण में कुटिलता है, मन में दुर्भावनाएँ हैं, उसके पास दैवी शक्तियाँ कभी नहीं आतीं। अघमर्षण की क्रिया के माध्यम से अंतर के अंधकार को नष्ट कर प्रकाश के आगमन की तैयारी की जाती है।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

इस हेतु दाहिने हाथ की हथेली में जल लेकर उसे दाहिने नथुने के समीप ले जाएँ, फिर बाएँ हाथ से बायाँ नथुना बंद कर लें और दाहिने नथुने से साँस खींचना आरंभ करें। साँस लेते समय भावना रहे कि गायत्री मंत्र के साथ आकर्षित हुआ प्राण हमारे अंदर के कलुष को नष्ट कर रहा है और हमारे द्वारा किए गए ज्ञात-अज्ञात पापों का संहार हो रहा है।

जब पूरी साँस खींच चुके हों तो बायाँ नथुना खोल दें और दाहिने नथुने को अँगूठे से बंद रखते हुए बाहर निकालना आरंभ कर दें। भाव यही रहे कि इस माध्यम से नष्ट किए गए पाप बाहर निकल कर हथेली में रखे जल में समाहित हो गए हों। इस जल को भूमि पर त्यागते ही अघमर्षण की यह प्रक्रिया भी समाप्त हो जाती है। उचित है कि त्रिविध पापों के संहार के लिए इसे 3 बार दोहराया जाए।

गायत्री के संध्यावंदन में अंतिम क्रम 'न्यास' का आता है। न्यास का शाब्दिक अर्थ धारण करने या स्थापित करने से है। पूर्व के क्रमों के माध्यम से हमारा शरीर, मन व अंतःकरण उस दैवी तत्त्व को धारण करने में समर्थ हो गया है, जिसे न्यास क्रम के माध्यम से स्थापित किया जाता है।

किसी समारोह की अध्यक्षता करनी हो तो मुख्य अतिथि के आने से पूर्व उनके बैठने की योग्य एवं उचित व्यवस्था की जाती है, वैसी ही व्यवस्था पूर्व के क्रमों द्वारा माँ गायत्री एवं उनकी दैवी शक्तियों के आगमन के लिए की गई है। इसी भावना को ध्यान में रखते हुए कि न्यास मंत्रों के साथ शरीर के जिन अंगों का स्पर्श किया जा रहा है, वे पवित्र तथा प्रखर हो

रहे हैं, न्यास क्रम को संपन्न करना चाहिए। अँगूठे एवं अनामिका उँगली को जोड़कर जल में भिगो लें एवं तत्पश्चात निम्न मंत्रोच्चार के साथ न्यास क्रम पूर्ण करें।

ॐ भूर्भुवः स्वः	मूर्धयि (मस्तिष्क को)
तत्सवितुः	नेत्राभ्यां (दोनों नेत्रों को)
वरेण्यं	कर्णाभ्यां (दोनों कानों को)
भर्गो	मुखाय (मुख को)
देवस्य	कण्ठाय (गले को)
धीमहि	हृदयाय (हृदय को)
धियो यो नः	नाभ्यै (नाभि एवं जननेंद्रिय को)
प्रचोदयात्-	हस्तपादाभ्यां (हाथ-पैरों को)

इन सब कार्यों को संपूर्ण करने के उपरांत माँ गायत्री का जप-ध्यान करना चाहिए। यहाँ बताए गए संध्यावंदन का क्रम इसलिए है, ताकि हमारी भावनाओं में सदाशयता आए, आंतरिक उन्नति हो एवं चित्त की शुद्धि हो।

बिना पवित्र भावनाओं के किए गए कर्मकांड का प्रभाव उतना नहीं होता, जितना शुद्ध चित्त से की गई पुकार का। यदि उपरोक्त संध्यावंदन परमात्मा, परमशक्ति माँ गायत्री की भक्ति के भाव में सराबोर होकर के किया जाए तो करने वाले का मन निर्मल होता है, परिवार में शांति-सौहार्दता आती है और आस-पास का वातावरण शुद्ध होता है।

आज के इस विषाक्त समय में ये हममें से हरेक से अपेक्षा है कि हम नित्य क्रम में उपासना-साधना को स्थान दें, ताकि हमारा आत्मपरिष्कार आने वाले कल में समाज निर्माण को प्रश्रय दे सके। गायत्री की संध्या-वंदन प्रक्रिया उसी निमित्त किया जाने वाला उल्लेखनीय प्रयास है। □

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄



प्रज्ञायुग लाने के हित में, शक्ति लगा दी सारी।
महाकाल के लीला सहचर, बनने की कर लें तैयारी ॥

मंगलमय शिव रौद्र रूप से, कर रहे हैं ताडं व नर्तन,
लोकमानस संतुलित करेगा, उनका ताडं व नर्तन,
दुर्जनता का पथ बनने की, आ गई मनुज की बारी।
महाकाल के लीला सहचर, बनने की कर लें तैयारी ॥

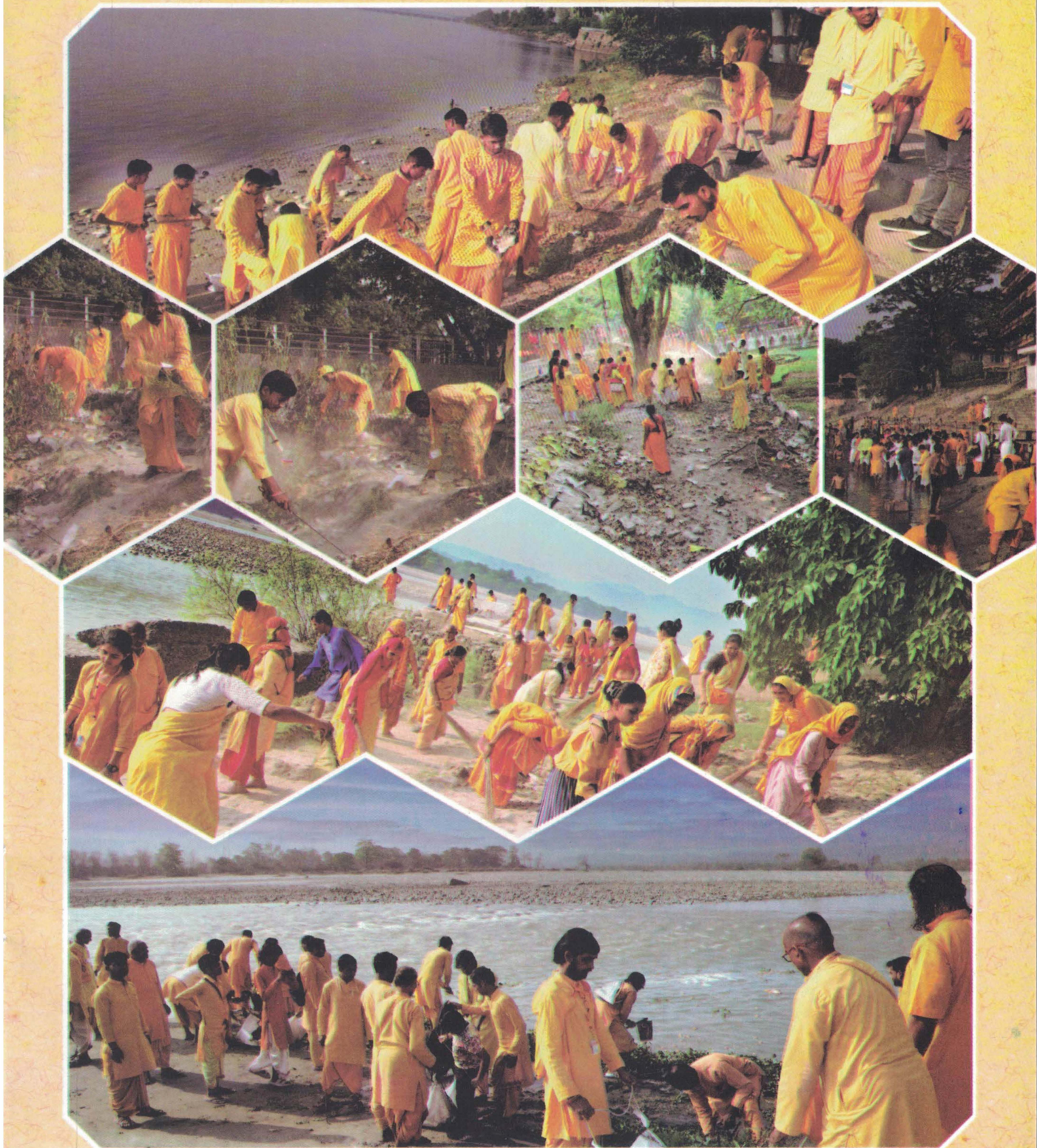
सघन आत्मीयता का विकास, हो रहा जगत् में बढ़कर,
वसुधैव कुटुंबकम् भाव जगा है, जनमानस में खुलकर,
दृष्टिकोण के परिवर्तन से, सुलझ रही समस्या भारी।
महाकाल के लीला सहचर, बनने की कर लें तैयारी ॥

जगा आत्मविश्वास मनुज का, परहित कदम बढ़ाया है,
सृजनकार्य में बढ़कर उनने, अपनी शक्ति लगाई है,
जगी मनीषा है धरती की, स्वर्ग बनेगी धरती सारी।
महाकाल के लीला सहचर, बनने की कर लें तैयारी ॥

युगसाहित्य पढ़ेगा मानव, युवक बनेंगे शाकाहारी,
सदाचार की बेला फूलेगी, महक उठेगी क्यारी-क्यारी,
स्वाध्याय-सत्संग बढ़ेगा जग में, होंगे मानव पर उपकारी।
महाकाल के लीला सहचर, बनने की कर लें तैयारी ॥

—विष्णु कुमार शर्मा 'कुमार'—

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄



गायत्रीतीर्थ शांतिकुंज-हरिद्वार के अंतेवासी कार्यकर्त्ताओं एवं शिविरार्थी परिजनों द्वारा
गंगातट शुद्धि अभियान के अंतर्गत महाश्रमदान

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52



www.awgp.org

प्र. ति. 01-07-2024

Regd. No. Mathura - 025/2024-2026

Licensed to Post without Prepayment

No. : Agra/WPP - 08/2024-2026



वृक्षारोपण एक परम पुनीत कर्तव्य
विश्वपर्यावरण दिवस पर युगतीर्थ शांतिकुंज हरिद्वार में तरु पूजन एवं वृक्षारोपण

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273

मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039

ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org